स्वदेशी अपनाएँ

विदेशी हमलों से सावधान

[पाञ्चजन्य स्वदेशी अंक से साभार]

स्वदेशी अपनायें

लेखक :

दया कृष्ण

कुप्० सी० सुदर्शन

दत्तोपंत ठेंगड़ी

डा० मुरली मनोहर जोशी

डा० एम० जी० बोकारे

बिन्दु माधव जोशी

लोकहित प्रकाशन, राजेन्द्र नगर, लखनऊ

प्रकाशक :
लोकहित प्रकाशन
संस्कृति भवन, राजेन्द्र नगर
लखनऊ–४

प्रथम संस्करण–फरवरी–१९९४
बसन्त पंचमी (माघ शुक्ल ५) सं० २०५०

मूल्य–रु० ६.००

मुद्रक :
कौशल प्रेस
संस्कृति भवन, राजेन्द्र नगर
लखनऊ–४

अमरीकी नागपाश

(भारत को आर्थिक गुलाम बनाने वाले)

★ दयाकृष्ण

तटकर और व्यापार के विषय में आम सहमति (गैट) का प्रादुर्भाव सन् १९४८ में हुआ था और इसका उद्देश्य विभिन्न देशों के बीच होने व्यापार तथा इस पर लगाए जाने वाले तटकर के लिये एक व्यवस्था का निर्माण करना था।

गत ४४ वर्षों में गैट वार्ता के सात चक्र हो चुके हैं। वर्ष १९७० तक हुए छह चक्रों में प्राय: तटकर की दर कम करने पर भी अधिक ध्यान दिया गया और परिणामस्वरूप इसमें पर्याप्त कमी भी हुई। गैट वार्ता का सातवां चक्र टोक्यो में हुआ और इनमें तटकर के अतिरिक्त कुछ अन्य विषयों पर भी विचार किया गया। सातों चक्रों का उद्देश्य वस्तुओं के विक्रय के लिए बाजार का विस्तार करना था।

गैट वार्ता का आठवां चक्र सितम्बर १९८६ में उरुग्वाय में प्रारम्भ हुआ था (इसे उरुग्वाय वार्ता भी कहते हैं)। इस चक्र में निम्नलिखित तीन नये क्षेत्र सम्मिलित किये गये हैं :

★ व्यापार संबंधित बौद्धिक सम्पदा के अधिकार (ट्रिप्स)

★ व्यापार संबंधित पूंजी निवेश के अधिकार (ट्रिम्स)

★ सेवाओं के क्षेत्र में व्यापार संबंधित अधिकार।

वस्तुतः उपर्युक्त तीनों नये क्षेत्रों के विषय में गैट वार्ता में जो प्रस्ताव अनुमोदनार्थ रखे गये वे आर्थिक शोषण के प्रस्ताव हैं और उनके क्रियान्वयन से विकासशील देशों की संप्रभुता का अतिक्रमण होता है। अतएव विकासशील देशों ने इन प्रस्तावों का विरोध किया। परन्तु विकसित देशों ने लोभ, भय एवं चतुराई से एक-एक करके सभी विकासशील देशों के विरोध के संकल्प को तोड़ दिया है।

परन्तु दिसम्बर, १९९० में यूरोपीय देशों तथा अमरीका और उसके साथी देशों के बीच कृषि क्षेत्र में दिये जाने वाले अनुदान के विषय में गंभीर मतभेद उत्पन्न हो गये और इसकारण वार्ता में गतिरोध आ गया। इस गतिरोध को समाप्त करने के उद्देश्य से गैट के महानिदेशक श्री डंकल ने सभी प्रस्तावों के विषय में पाये जाने वाले मतभेदों को देखते हुए एक 'समझौता प्रस्ताव' का प्रभाव तैयार किया। इसे डंकल प्रस्ताव कहते हैं।

जहरीला प्रस्ताव

डंकल प्रस्ताव में दिये गये 'बौद्धिक संपदा संबंधी' सुझाव भारत के लिये अत्यन्त हानिकर हैं। इनको मान लेने से भारतीय एकस्व (पेटेंट) कानून (१९७०) रद्द हो जायेगा। भारत के रसायन तथा औषधि सम्बन्धी उद्योगों को भारी हानि होगी, इस क्षेत्र के अनुसंधान कार्य का विस्तार रुक जायेगा, देश में औषधियों की कीमतों में भारी वृद्धि हो जायेगी और प्रतिवर्ष भारत को विदेशी कम्पनियों को बहुत बड़ी राशि रायल्टी के रूप में देनी होगी।

अमरीका का कहना है कि भारत का एकस्व (पेटेंट) कानून अमरीकी हितों की रक्षा नहीं करता अतः इसे बदल देना चाहिये। इस विषय में निम्नलिखित चार तथ्य महत्वपूर्ण एवं विचारणीय हैं।

(१) भारतीय एकस्व (पेटेंट) कानून (१९७०) बहुत सोच-विचार के पश्चात् तथा उपभोक्ता एवं उत्पादक दोनों के हितों को ध्यान में रखते हुये बनाया गया था और संसद की स्वीकृति के पश्चात् ही लागू किया गया था उसे बदलने का अधिकार केवल संसद को है।

(३) अमरीका का यह कहना कि भारतीय कानून अमरीकी हितों की रक्षा नहीं करता, अतः उसे बदल देना चाहिये निरर्थक है, क्योंकि भारतीय कानून का उद्देश्य भारतीय हितों की रक्षा करना होता है, अमरीकी हितों की नहीं।

अमरीकी एकस्व (पेटेंट) कानून अमरीकी सीमाओं में ही वैध एवं मान्य हैं, उसके बाहर नहीं।

(४) भारतीय एकस्व (पेटेंट) कानून गत २२ वर्षों से लागू है और उस लम्बी अवधि में अमरीका ने इस कानून के विरुद्ध कभी कोई आपत्ति नहीं की।

वास्तविकता यह है कि भारत के रसायन तथा औषधि उद्योग विश्व में अमरीकी उद्योगों के प्रतिस्पर्धी के रूप में उभर रहे हैं, जिससे अमरीकी कम्पनियों का विश्व बाजार में एकाधिकार खत्म होने का भय हो गया है। चूंकि भारत विदेशी संगठनों के ऋण जाल में फंसा हुआ है, इसी कमजोरी के तहत अमरीका अनुचित लाभ उठाना चाह रहा है।

अब एक अत्यन्त खतरनाक षड्यन्त्र के तहत जीवित पदार्थों को भी पेटेंट कानून के अन्तर्गत लाने की कोशिश की जा रही है। इसीलिये डंकल प्रस्ताव में जीवित पदार्थों तथा पौधों की किस्मों को भी एकस्व 'पेटेंट' करने का प्रस्ताव किया गया है। अभी तक पौधों और जीवित प्राणियों का एकस्व (पेटेंट) नहीं होता था। स्वयं अमरीका में १९८० तक जीवित प्राणियों का एकस्व (पेटेंट) नहीं होता था, जैविक सम्पदा को सार्वजनिक संपदा माना जाता रहा है।

जीवित पदार्थों को एकस्व (पेटेंट) कानून के अन्तर्गत लाने के भीषण परिणाम होंगे। खाद्य पदार्थों एवं औषधियों के आवश्यक स्रोत बहुदेशीय कम्पनियों के हाथ में चले जाएंगे। यह वास्तव में छल है। वर्तमान की सभी फसलों के बीजों का विकास तीसरी दुनिया के देशों ने किया है। बहुदेशीय कम्पनियों ने इन्हीं बीजों में से नई प्रजातियां विकसित की हैं जो कि खाद्य पदार्थों तथा औषधियों की बहुमूल्य स्रोत हैं। बहुराष्ट्रीय कम्प-

पनियां इन प्रजातियों को एकस्वित (पेटेंट) करके अपार मुनाफा कमाना चाहती हैं।

यदि भारत ने डंकल प्रस्ताव के अन्तर्गत जीन (प्रजाति) एकस्व (पेटेंट) करने के सुझाव को मान लिया तो उसका कृषि विकास ठप्प हो जायेगा और विभिन्न फसलों की उन्नत किस्मों के लिये बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के दरवाजे खटखटाने पड़ेंगे।

सुपर ३०१ एवं स्पेशल ३०१

अमरीका का यह आरोप है कि वस्तुओं एवं सेवाओं के व्यापार तथा व्यापार सम्बन्धित पूंजी निवेश के प्रवाह को रोकने हेतु कई देशों द्वारा अनुचित अवरोध खड़े किये जाते हैं। जिनके कारण अमरीका के व्यापारिक एवं व्यावसायिक हितों को हानि पहुंचती है। इन देशों के विरुद्ध प्रतिकारात्मक कार्रवाई करने के उद्देश्य से अमरीका ने ट्रेड एवं कम्पीटीटिव एक्ट १९८८ की धारा सुपर ३०१ की व्यवस्था की है। इस धारा के अन्तर्गत की जाने वाली कार्रवाई से पूर्व की जांच तीन साल के समय तक चल सकती है। अमरीका ने १९९० में भारत के विरुद्ध कार्यवाही प्रारम्भ करने की घोषणा की थी परन्तु इससे संबन्धित जांच को उरुग्वाय चक्र की वार्ता के समाप्त हो जाने तक स्थगित कर दिया था।

स्पेशल ३०१ का प्रयोग केवल बौद्धिक सम्पदा के अधिकारों के उल्लंघन के विषय में किया जाता है। इस धारा के अन्तर्गत कार्रवाई सुपर ३०१ की तुलना में कहीं अधिक गति से की जाती है। राष्ट्रीय व्यापार के वार्षिक अनुमान प्रकाशित हो जाने के तीन दिन बाद अमरीका के व्यापारिक प्रतिनिधि को बौद्धिक सम्पदा के अधिकारों का उल्लंघन करने वाले देशों की पहचान करके और उसके तीस दिन बाद इन देशों के विरुद्ध जांच प्रक्रिया शुरू करनी होती है। दोषी देशों के अपराध का विवरण तथा उस विषय में की जाने वाली प्रतिकारात्मक कार्रवाई की घोषणा जांच प्रक्रिया के शुरू किये जाने के छः माह के अन्दर करनी होती है।

घृणित काल

स्पेशल ३०१ के अन्तर्गत अमरीका के व्यापारिक प्रतिनिधि को स्वेच्छानुसार निर्णय लेने के असीमित अधिकार हैं। भारत के विरुद्ध कार्यवाही स्पेशल ३०१ अन्तर्गत की जा रही है।

प्रतीकारात्मक कार्रवाई के नाम से अमरीका भारत से आयात की जाने वाली वस्तुओं पर कटौती प्रतिबन्ध लगाने की धमकी दे रहा है। अमरीका जानता है कि वर्तमान कर्जदारी और भुगतान संतुलन की कठिन परिस्थिति में फंसा हुआ भारत अपने आयात व्यापार के मार्ग में बाधा को सहन करने की स्थिति में नहीं है। अतएव, वह अपने एकस्व (पेटेंट) कानून में परिवंतन स्वीकार कर लेगा। यही नहीं भारत को अलग-थलग करके उसका मनोबल और संकल्प तोड़ने के उद्देश्य से अमरीका ने चीन के साथ समझौता कर लिया है। विश्व में प्रजातन्त्र की दुहाई देने वाले देश अमरीका ने विश्व में सबसे बड़े प्रजातन्त्र भारत के आर्थिक शोषण हेतु विश्व के सबसे बड़े साम्यवादी देश चीन को अपना साथी बनाया है। उसे स्पेशल ३०१ के अभियोग से मुक्त किया है और व्यापार के क्षेत्र में उसे सर्वाधिक कृपापात्र देश (मोस्ट फेवर्ड नेशन) भी माना है। इस सिद्धान्तहीन अनैतिक और निंदनीय कृत्य को अमरीकी शब्दावली में 'रिअल पालिटिक' कहा जाता है।

अपराधी अमरीका

वास्तविकता यह है कि अमरीका अपने किसी भी कानून को किसी भी अन्य देश पर जबर्दस्ती लागू नहीं कर सकता। ऐसा प्रयास ही असभ्यता एवं अपराधी मानसिकता का प्रमाण है। और यह भी सत्य है कि स्वतंत्र व्यापार के मार्ग में बाधाएं खड़ी करने का सबसे बड़ा अपराधी स्वयं अमरीका है। विश्व बैंक के अनुसार नवम् दशक के समय में अमरीका ने अपने तटकरों में कई गुना वृद्धि की है। गैट ने भी अमरीका पर आरोप लगाया है कि वह ऐसे बहुत से अनुचित कार्य कर रहा है जो विश्व में स्व-

तंत्र और बहुपक्षीय व्यापार के लिए हानिकारक हैं। यूरोपीय देशों ने भी अमरीका पर स्वतंत्र व्यापार के मार्ग में अनुचित अवरोध खड़े करने का आरोप लगाया है।

चीन से सांठ-गांठ करने के बाद अमरीका का एकमेव उद्देश्य भारत पर दबाव बढ़ाकर उसे झुकने के लिये विवश करना है। और इस हेतु अमरीका हर संभव प्रयास भी कर रहा है, परन्तु भारत को झुकाना संभव नहीं है।

विकसित करें नया युगधर्म

कुप्० सी० सुदर्शन
सह सरकार्यवाह, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ

देश को स्वतन्त्र हुए ४५ वर्ष हो गये किन्तु यह विडम्बना है कि हमें स्वदेशी आन्दोलन फिर से आरम्भ करना पड़ रहा है। आन्दोलन को जनता का समर्थन भी मिल रहा है। समर्थन मिलने का क्या कारण है ? इसका कारण है एक घटना, जिसने सारी जनता को देश की आर्थिक कमजोरी का आभास करा दिया। और वह घटना थी कि हमारे देश को कर्ज चुकाने के लिए अपना सोना गिरवी रखना पड़ा। यह बात आम आदमी की समझ में आ गई। वास्तव में इस घटना के बाद विश्व में हमारी कोई प्रतिष्ठा शेष नहीं बची है। आर्थिक नीतियों की खामियों और बराबर घटती घटनाओं ने जनता को स्वदेशी आन्दोलन की ओर आकर्षित किया है। गलत आर्थिक नीति ने देश को दीवालिया बनाने की हद तक पहुंचाने में कोई कमी नहीं रखी है। आजादी के समय १५ अगस्त, १९४७ को देश की राजस्व-राशि जहां १८ हजार करोड़ रुपये थी, वहीं आज देश पर ४ लाख करोड़ रुपयों की बाहरी और अन्दरूनी ऋणों की देनदारी हो गयी है।

गाँधीवाद बनाम नेहरूवाद

कांग्रेस में पं० नेहरू के समाजवादी विचारों से प्रभावित व्यक्तियों

के उद्‌भव के फलस्वरूप आर्थिक समस्याओं के प्रति गांधीवादी सिद्धान्त को नेहरू के भौतिकतावादी विचारों ने ढक लिया। एक उदाहरण प्रस्तुत है :—

५ अक्टूबर, १९४५ को महात्मा गांधी ने पं० नेहरू को एक पत्र लिखा जिसमें उन्होंने देश के विकास के बारे में नेहरू के विचार जानने चाहे। महात्मा गांधी ने इस पत्र में नेहरू जी को सुझाव दिया था कि 'भारत की बहुत बड़ी जनसंख्या गांवों में रहती है अतः विकास की योजनाएं गांवों को ध्यान में रख कर बनायी जाएं जिससे व्यक्ति की वास्तविक आवश्यकताएं पूरी हो सकें और वह आत्मनिर्भर बने।' किन्तु नेहरू जी ने उत्तर दिया, 'मैंने लगभग २० वर्ष पहले **हिन्द स्वराज** में आपके विचार पढ़े थे। मैं उस समय भी उससे सहमत नहीं था और आज तो समय इतना बदल गया है कि यदि हम उन्हीं विचारों पर चलें तो जरा भी प्रगति नहीं कर पाएंगे।' उन्होंने यह भी कहा, 'आमतौर पर जिसे हम गांव कहते हैं वह बौद्धिक तथा सांस्कृतिक दोनों रूप से पिछड़ा होता है और किसी भी पिछड़े माहौल में किसी प्रकार की प्रगति नहीं की जा सकती है। संकीर्ण विचारों के लोग झूठे और हिंसक हो जाते हैं। हमें गांवों को शहरी संस्कृति में ढालना होगा।'

छद्म औद्योगिक क्रांति

और यह कोई आश्चर्य की बात नहीं कि उसी वर्ष कांग्रेस उच्च कमान द्वारा पारित १२ सूत्री संकल्प में उनके विचार दृष्टिगोचर हो गये। जिसके परिणामस्वरूप इसी मानसिकता के कारण स्वतंत्रता के बाद भी इस सिद्धान्त में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। हालांकि प्राकृतिक संसाधनों का नियंत्रण केन्द्र सरकार के हाथों में था फिर भी राष्ट्रीय संसाधनों के प्रबन्ध के लिए बनायी गयी औपनिवेशिक संस्थाएं वैसी ही बनी रहीं। उनमें कोई परिवर्तन न हो सका। वास्तव में अंग्रेजों द्वारा स्थापित इन संस्थाओं का उद्देश्य था कि उनके कारखानों को चलाने के लिये कम से कम लागत पर कच्चा माल मिलता रहे, और यही नीति स्वतंत्रता के बाद भी जारी रही।

हमने उसे इसलिए नहीं बदला क्योंकि हम इस 'औद्योगिक क्रान्ति' पर बेहद मोहित थे। हमने सोचा कि जैसे यूरोपीय देश और इंग्लैण्ड औद्योगिक क्रान्ति से फल-फूल गये, हमें भी उन्नति केलिए ऐसा ही करना चाहिए।

अब यह मानना कि इंग्लैण्ड और अन्य यूरोपीय देश औद्योगिक क्रान्ति के कारण अमीर तथा उन्नतशील हुए, गलत है। वास्तव में औद्योगिक क्रान्ति के लिए भारी पूंजी की आवश्यकता थी और १७५७ ई० तक इंग्लैण्ड में यह पूंजी उपलब्ध नहीं थी। तो फिर यह कहां से आई ?

यह पूंजी १७५७ में हुई प्लासी की लड़ाई के बाद भारत से आई। **भारत के करोड़ों व्यक्ति लूटे गए और उसके एकदम बाद १७६० में भिन्न-भिन्न सुप्त आविष्कार मूर्त होने लगे।**

१७६० में 'फ्लाइंग शटल' का अविष्कार हुआ और पिघलाने के काम में लकड़ी की जगह कोयले का उपयोग होने लगा। १६६८ में बाष्प इंजन बना। १७८५ में बिजली के करघे का आविष्कार हुआ। इस प्रकार हर साल औसतन २५ करोड़ रुपये देश से लूटे गए। जबकि तब के २५ करोड़ रू० की क्रय-शक्ति आज के ५००० करोड़ रु० के बराबर थी। यह सिलसिला १७५७ से, वाटरलू की लड़ाई के वर्ष १८१५ तक चलता रहा। यही वह निरन्तर लूट थी जिसने इंग्लैण्ड की औद्योगिक क्रान्ति को पोसा।

उन्नीसवी शताब्दी के मध्य तक इंग्लैण्ड में उत्पादन कार्य के लिए मशीनों का इस्तेमाल नहीं होता था। 'औद्योगिक क्रान्ति के' बाद भी वहां तैयार माल इतना घटिया होता था कि वह विश्व बाजारों में छाए हुए अति परिष्कृत भारतीय माल की बराबरी नहीं कर सकता था।

हम समर्थ थे

कपड़ा, इस्पात और कृषि उत्पादों के क्षेत्रों में हमारे पास परिष्कृत प्रौद्योगिकी थी। भारत में बने कपड़े की इतनी मांग थी कि सन् १८०० में ब्रिटेन को भारतीय कपड़े पर प्रतिबन्ध लगाना पड़ा था लेकिन इसकी

तस्करी की जाती थी । १८७५ में एडिनबर्ग में एक 'देशभक्त संघ' बनाया गया और उसने लोगों से उन महिलाओं का बहिष्कार करने का आह्वान किया जो इतनी 'भ्रष्ट' थीं कि भारतीय कपड़ा पहनती थीं ।

जहां तक भारतीय प्राद्योगिकी का सम्बन्ध है यह विकेन्द्रीकृत होने के बावजूद परिष्कृत थी। जब हम प्रौद्योगिकी की बात करते हैं तो हम बड़ी-बड़ी मशीनों का विचार करते हैं। आश्चर्य की बात तो यह है कि अंग्रेज हमारी प्राद्योगिकी को पुरातनवादी कहते थे। लेकिन यह इस हद तक परिष्कृत थी कि हम आज भी वहां तक नहीं पहुंच सके हैं। तब हम २,४२५ नं० का धागा बना सकते थे लेकिन आज हम २५० से अधिक नं० का धागा नहीं बना सकते। इस प्रकार हम इस्पात बनाने के लिए ३०० रुपए की कुल लागत में भट्ठी बना लेते थे, जिन्हें दो कंधों पर देहात में कहीं भी ले जाया जा सकता था और किसी भी नदी के किनारे पिघलाने का काम शुरू किया जा सकता था । तैयार किया गया इस्पात अच्छी किस्म का होता था जिसकी लागत मात्र ५० रुपए टन होती थी जब कि इंग्लैण्ड में औद्योगिक ढंग से तैयार इस्पात की लागत २५० रुपए टन होती थी ।

कृषि के मामले में भी यही कहानी थी। हमारे पास एक परिष्कृत प्रौद्योगिकी थी। जब अंग्रेजों ने पाया कि वे भारतीय माल की बराबरी नहीं कर सकते, तो उन्होंने भारतीय उद्योग को तहस-नहस करने की ठान ली और ऐसा किया भी। यह हमारे इतिहास का एक कारुणिक अध्याय है।

अब फिर भारत को अमीर देशों के तैयार माल का बाजार बनाने की चेष्टा की जा रही है। स्वतंत्र होने पर हमने औद्योगिक क्रान्ति का मार्ग तो चुन लिया किन्तु इसके लिए हमारे पास पूंजी नहीं थी। उस समय इन अमीर विकसित देशों ने कहा, 'हम तुम्हें धन देंगे' और उन्होंने हमें सहायता के रूप में ऋण दिया, जो आज हमारे मनोबल और आत्मनिर्भरता को चूस रहा है।

संसाधनों पर हमला

ये देश हमें मात्र कच्चे माल की आपूर्ति करने वाला और अपने उत्पादों का बाजार बनाना चाहते हैं। हमने वे ऋण इस आशा में लिये थे कि हम उन्हें लौटा सकेंगे लेकिन ऋण लौटाए नहीं जा सके बल्कि बढ़ते गये। अब हम एक ऐसे ऋणजाल मे फंसे हैं जिसमें ऋण लौटाने के लिए हमें और ऋण लेने पड़ेंगे। ऐसा नहीं है कि यह स्थिति केवल हमारे देश की ही है। यह स्थिति उन सभी देशों की है जिनके पास अब भी कुछ प्राकृतिक संसाधन बचे हुए हैं।

दक्षिण अमरीका और एशिया के देशो में भी अभी कुछ प्राकृतिक संसाधन हैं। प्रचुर संसाधन भक्षी उत्पादन कार्यों में उपयोग करने हेतु इन प्राकृतिक संसाधनों पर काबू पाने के लिए अमीर देशों ने इस 'आर्थिक साम्राज्यवाद' का जाल फैलाया है और विश्व बैंक तथा अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा-कोष जैसी बहुआयामी वित्तीय संस्थाएं इस कार्य में प्रतिनिधि का काम कर रही हैं। वे ऐसे सभी संसाधन बहुल देशों को गुलाम बनाना चाहते हैं।

मार्च १९७६ में विकसित देशों के उपनिदेशक बुश नील ने अमरीकी सीनेट के विदेशी कार्यों की एक उपसमिति को बताया, 'अमरीकी दृष्टि-कोण के अनुसार ये बैंक स्वयं हमारी अर्थ व्यवस्था के अनुरूप विकास को प्रोत्साहित करते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय विकास बैंकों में हमारी भागीदारी से आवश्यक कच्चे माल की प्राप्ति और विकासशील देशों में अमरीका के निवेश के लिए एक बेहतर वातावरण सुनिश्चित हो सकेगा।' मतलब बिलकुल साफ है।

ब्यूरो आफ एकोनामिक एण्ड बिजनेस एफेयर्स ऑफ स्टेट के एक अन्य सहायक सचिव श्री जानस्टन जे० ने अमरीकी सिनेट को बताया, 'बहुआयामी विकास बैंकों में निवेशित हमारे प्रत्येक डालर से अमरीकी फर्मों के लिये ३ डालर का व्यापार प्राप्त होता है।' भारत सरकार द्वारा अमरीकी दबाव से लाई गयी उदारीकरण नीति के कारण ये अमरीकी

कम्पनियां तेजी से हमारे बाजार में घुस रही हैं । अमरीका द्वारा लगाई जा रही शर्तों का भी अब हमें पता चल रहा है । हाल में अमरीकी व्यापार प्रतिनिधि कार्ला हिल्स ने हमें चोर कहा, हमने यह अपमान बर्दाश्त कर लिया क्योंकि हम कुछ नहीं कर सकते । हमारा देश ऋण से दबा है ।

नौकरी का लालच

कई लोग कहते हैं कि ये बहुराष्ट्रीय कम्पनियां हमें नवीनतम प्रौद्योगिकी प्रदान करेंगी, वे हमारी जनता को रोजगार देंगी । लेकिन बहुराष्ट्रीय औषधि निर्माण कम्पनियों के प्रभाव का अध्ययन करने के लिये गठित हाथी समिति का मत था, 'बहुत कम ही ऐसा होता है कि नयी प्रौद्योगिकी को निःशुल्क या कीमत लेकर बाहर जाने दिया जाए । मूल विदेशी कम्पनियों से भारतीय उपक्रमों या भागीदारों को दी जाने वाली प्रौद्योगिकी पिछले १५-२० वर्ष से प्रचलित होती है और उसे समान भागीदारी के बिना भी आयातित किया जा सकता है ।

इस प्रकार नयी प्रौद्योगिकी नहीं आती है । इसी तरह रोजगार भी उपलब्ध नहीं होता है । नवीनतम मामला है पेप्सी कोला का जिसने पचास हजार व्यक्तियों के रोजगार का विश्वास दिलाया था लेकिन अब तक इसने केवल ४८६ व्यक्तियों को ही काम पर लगाया है । वे कहते थे उनका माल निर्यात होगा लेकिन अब वे केवल स्थानीय खपत करा रहे हैं ।

अब वे त्वरित भोजन (फास्ट फूड) के क्षेत्र में आ गये है जिसकी हमें बिलकुल आवश्यकता नहीं है क्योंकि इडली-दोसा, उपमा, सत्तू, चिवड़ा, पापड़ चिप्स हमारे सुपरफास्ट फूड हैं । ये बहुराष्ट्रीय कम्पनियां इस क्षेत्र में इसलिए घुस रही हैं क्योंकि इससे उन्हें भारी लाभ मिल सकेगा । अपने पैसे की ताकत से वे सभी स्थानीय कम्पनियों को हटाने की कोशिश करेंगे ।

एक बात निश्चित है कि इन बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने एक बाजार-विचार धारा को जन्म दिया है । इस विचार धारा में जनता को निर्धन

और पिछड़ा कहा जाता है। उन्होंने लोगों के दिमाग में सभ्यता प्रेरित निर्धनता का भाव भर दिया है। उनके विज्ञापन हमें यह अहसास करते हैं कि हम पिछड़े और निर्धन हैं। यह एक ऐसी स्थिति है जो इन कथित 'बाजार वालों' द्वारा बनायी गई है। और आखिर इससे बचने का रास्ता क्या है ?

जीवन पद्धति का चुनाव

सबसे पहले हमें यह तय करना होगा कि हमें कैसी जीवन पद्धति चाहिए। एक तो पश्चिमी पद्धति है। साम्यवाद और पूंजीवाद इसी के बच्चे हैं। इस पश्चिमी पद्धति का विकास (१) अस्तित्व के लिए संघर्ष, (२) सर्वोत्तम का अस्तित्व (३) प्रकृति का शोषण (४) वैयक्तिक अधिकार की मूल धारणाओं पर हुआ

इन्हीं धारणाओं पर पूंजीवाद विकसित हुआ। एडम स्मिथ और कीन्स को पूंजीवाद का प्रणेता माना जाता है। एडथ स्मिथ ने कहा था, 'कभी किसी का भला मत करो। करना ही है तो तब करो जब उससे कोई स्वार्थ सिद्धि होती हो।' कीन्स ने कहा अगले सौ वर्षों तक हमें स्वयं को और दूसरों को यह समझाना चाहिये कि 'अच्छा ही बुरा है और बुरा ही अच्छा है। क्योंकि बुरा प्रभावकारी होता है, अच्छा नहीं। कुछ समय और लालच और कंजूसी को हमारा भगवान बना रहने दो, क्योंकि इन्हीं की सहायता से हम गरीबी की सुरंग को पार कर सकेंगे।' कोई भी कल्पना कर सकता है कि इन पद्धतियों से व्यक्ति कैसे बनेगा ?

वे एक अत्यन्त शोषक समाज बनाने में सफल रहे हैं। इतना ही नहीं, इसने अंतत: जीवन के सभी मूल्यों, परिवार प्रणाली और मानव सम्बन्धों तक को नष्ट कर दिया है। अमरीका, जो कि विश्व का सबसे अमीर देश है, में तस्वीर का दूसरा रुख एकदम भयावह है। माता-पिता और बच्चों में प्रेम खत्म हो गया है। हर कोई समझता है कि उन्हें केवल अपनी पीढ़ी की चिन्ता करनी है। मुझे अपनी पिछली या अगली पीढ़ी की चिन्ता

करने की जरूरत नहीं है। इसे होमोसेन्टेसिज्म, अर्थात् केवल अपनी ही पीढ़ी के बारे में सोचना कहते हैं।

दूसरी ओर, इसकी प्रतिक्रिया के तौर पर साम्यवाद आया। इसने हर चीज को अति केन्द्रीकृत कर दिया। जहाँ पूंजीवाद ने व्यक्ति को पूर्ण स्वतंत्रता दी, साम्यवाद ने ये सभी स्वतंन्त्रताएं छीन लीं और एकाधिकारवादी समाज बनाया।

आज यह प्रयोग भी असफल हो गया है इसलिये अब हमें अपना रास्ता स्वयं ढूढ़ना है।

'वे' और 'हम'

पश्चिमी पद्धति अस्तित्व के लिए संघर्ष में यकीन करती है। हमारा कहना है कि **इस ब्रह्माण्ड में कोई संघर्ष नहीं है क्योंकि यह एक ही परमसत्य की अभिव्यक्ति है।**

हम सिर्फ सर्वोत्तम के जीवित रहने की धारणा में यकीन नहीं करते हैं। हमारा मानना है कि हर व्यक्ति को जीवित रहना है क्योंकि हर व्यक्ति की एक भूमिका होती है। साम्यवादियों का कहना है 'जो कमायेगा, सो खायेगा,' लेकिन हमारी संस्कृति मानती है–'जो पैदा हुआ है वह खायेगा। जो कमायेगा सो खिलायेगा।'

संस्कृति की महानता का पता इस बात से चलता है कि वह कमजोरों, शोषितों और बेसहारा व्यक्तियों के साथ कैसा व्यवहार करती है। हम प्रकृति के गलत इस्तेमाल में विश्वास नहीं करते हैं। क्योंकि हम जानते हैं कि प्रकृति ने हमारी मूल आवश्यकताओं की व्यवस्था की है। हमें उतना ही ग्रहण करना है जो कि हमारे लिए आवश्यक है। हमें प्रकृति का दोहन करना है दुरुपयोग नहीं। शोषण और दोहन के ये दो विचार क्रमशः पश्चिमी और हमारी अपनी विचारधारा के परिचायक हैं। हम व्यक्ति और प्रकृति के बीच एक सहजीवी सम्बन्ध में विश्वास करते हैं।

इसके उपरान्त आते हैं व्यक्ति के अधिकार। हम व्यक्तियों के अधिकार

को नहीं मानते, क्योंकि हमारे विश्वास में व्यक्ति शेष प्रकृति से अलग कोई चीज नहीं है। हम इस सब का एक हिस्सा हैं। पश्चिमी संस्कृति कहती है कि दुनिया हिस्सों में बंटी है जो कतिपय नियमों के अनुसार कार्य करते हैं। हम कहते हैं कि पूरी दुनिया एक इकाई है। हम इसे अंगांगी भाव कहते हैं। जैसे कि अंग और शरीर। अंगों के कार्य तो भिन्न-भिन्न होते हैं किन्तु उनके अधिकार भिन्न नहीं होते। हर अंग शरीर के लिये काम करता है। बदले में शरीर अंगों का ध्यान रखता है। इसी प्रकार परिवार एक शरीर है हम इसके अंग हैं। परिवार में हर सदस्य के अधिकारों की रक्षा अन्यों के कर्तव्यों से होती है। बच्चों के अधिकारों की रक्षा करना पिता का कर्तव्य होता हैं। पिता के अधिकारों की रक्षा बच्चों के कर्तव्य में निहित है इस प्रकार पूरा परिवार तरक्की करता है। यह हमारा मत है।

बदलाव आवश्यक

हम भी मानते हैं। कि विभिन्न संस्थाओं को, चाहे वे कितनी भी अच्छी क्यों न हों, वातावरण तथा समयानुसार बदलना पड़ता है। हम बदलाव के विरुद्ध नहीं हैं। अल्फ्रेड टेनिसन ने कहा था, पुरानी व्यवस्थाएं बदलती हैं, उनका स्थान नयी व्यवस्था लेती हैं क्योंकि कितनी भी अच्छी व्यवस्था क्यों न हो वह अन्त में दुनिया को बिगाड़ देगी।

निःसदेह हमारा धर्म सनातन है, लेकिन यहां युगधर्म भी है। अर्थात् सनातन धर्म के मूल सिद्धान्तों पर आधारित संस्थाओं और परम्पराओं को समय-समय के अनुरूप ढालना है। समय आ गया है कि एक नया युग-धर्म अपनाया जाये, जिसमें स्वदेशी की एक महत्वपूर्ण भूमिका हो।

हमें चुनाव करना है कि हमें कैसी जीवन शैली चाहिये ? इस सीमित ग्रह पर हमें सीमा से अधिक उपभोग प्राप्त नहीं हो सकता। अतः एक ऐसी मनोदशा बनानी होगी जिसमें आवश्यकताओं को कम किया जाये। यह मनोदशा मूर्त उदाहरणों से बनायी जा सकती हैं। समाज का उच्च

वर्ग ऐसी जीवनशैली का आदर्श बन सकता है । तब जनता ऐसे उदाहरणों का निश्चित तौर पर अनुपालन करेगी ।

ये विचार जनता पर लादे नहीं जाने चाहिए बल्कि वे सहज रूप से विकसित हो सकें इस दृष्टि से उनकी सहायता करनी चाहिये । लोग भिन्न-भिन्न स्तर पर होते हैं । हर स्तर की आवश्यकताएं पूरी करनी होंगी । अगर हम इस दलदल से निकलना चाहते हैं तो आत्मनिर्भरता हमारी पहली शर्त होनी चहिये । आवश्यक है आत्मविश्वास । हमारी जनता नया कुछ करने अथवा बौद्धिकता में किसी से पीछे नहीं है ।

आज हमारे सामने एक और आवश्यक कार्य यह पता करने का है कि हमारे पास जनशक्ति कैसी है और उपलब्ध प्रौद्योगिकी किस किस्म की है । संस्कृत की शिक्षा न दी जाने के कारण हम अपनी विरासत से दूर हट गये हैं। उधर ब्रिटेन में पाठ्यक्रमों में गणित के वैदिक सिद्धान्त लागू किये गये हैं ।

हमें विदेशी प्रौद्योगिकी का एकदम विरोधी नहीं होना है । हम अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप चल कर उसे अपनाएं । हमें एक पुनर्संरचना करनी होगी जिसके द्वारा समाज में हर व्यक्ति को काम मिले ।

सत्ता का विकेन्द्रीकरण भी अत्यावश्यक है । हमें लघु तथा हथकरघा उद्योगों की ओर अधिक ध्यान देना होगा क्योंकि १९८७ के अंत तक निजी और सरकारी दोनों क्षेत्रों में केवल २७५ लाख व्यक्तियों के पास रोजगार था जबकि हथकरघा तथा लघु उद्योगों में २७८ लाख व्यक्ति लगे थे । ग्रामीणों को तैयार माल गाँव में ही उपलब्ध करना होगा तथा शिक्षा, राजनीति तथा सामाजिक क्षेत्रों में भी इसी के अनुरूप परिवर्तन करने होंगे ।

प्रसिद्ध अर्थशास्त्री मालकम आदिशेषैया के अनुसार हमें सूक्ष्मतम स्तर की योजनाएं चाहिये जो उच्चतर स्तरों पर एकीकृत होती चलें ।

स्वदेशी एक भावना है, और एक अनुभव भी। जब विकसित देश अप-ना स्वदेशी नारा लगा सकते हैं तो हम स्वदेशी से परहेज क्यों करें?

भारतीय बनें, भारतीय खरीदें।

बौद्धिक सम्पदा का 'प्रेत'

दत्तोपंत ठेंगड़ी

संस्थापक अध्यक्ष, भारतीय मजदूर संघ

सामान्यत: सम्पदा का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पहलू यह है कि उसका मालिक अपनी सम्पदा का जैसा चाहे वैसा,- और बिना किसी हस्तक्षेप के प्रयोग कर सकता है। साथ ही कोई अन्य व्यक्ति बिना उसकी अनुमति के उसका विधिमान्य प्रयोग नहीं कर सकता।

सम्पदा सामान्यत: तीन प्रकार की होती है :

- **चल सम्पत्ति**
- **अचल सम्पत्ति**
- **बौद्धिक सम्पत्ति**

बौद्धिक सम्पदा की दो मुख्य शाखाएं हैं : पहली – औद्योगिक सम्पदा, मुख्यत: आविष्कारों, मार्कों, (ट्रेडमार्कों) औद्योगिक अभिकल्पनाओं तथा स्रोतों के अभिधानों (एपलेशन) सम्बन्धी और दूसरी-कापीराइट, मुख्यत: साहित्य, संगीत, ललित कला, फोटोग्राफी, दृश्य-श्रव्य क्षेत्रों सम्बन्धी।

बौद्धिक सम्पदा के घटक मानवीय मस्तिष्क और बुद्धि की सृष्टि होते हैं। इसीलिए इसे बौद्धिक सम्पदा कहते हैं। इसका सीधा सम्बन्ध सूचना के किसी साकार माध्यम (जैसे पुस्तक या ध्वनि मुद्रिका) में एक ही समय पर असीम संख्या में विभिन्न स्थानों पर विश्व में कहीं भी भरे जाने से है। वास्तव में सम्पत्ति उन प्रतियों में नहीं अपितु उस सूचना में

निहित होती है जो उन प्रतियों में है। चल और अचल सम्पत्ति की ही तरह बौद्धिक सम्पत्ति की भी अपनी सीमाएं हैं, उदाहरणत: कापीराइट तथा एकस्व (पेटेन्ट) के मामले में समय सीमा।

'विश्व बौद्धिक सम्पदा' नामक संगठन का जन्म स्टाकहोम में १४ जुलाई १९६७ को सम्पन्न हुए अधिवेशन में हुआ। इसमें यह निश्चित किया गया कि बौद्धिक सम्पत्ति के अधिकार निम्नलिखित कारकों से सम्बन्धित होंगे–

(१) साहित्यिक, कलात्मक और वैज्ञानिक सृजन,
(२) कलाकारों द्वारा ललित कला के प्रदर्शन फोनोग्राम तथा प्रसारण,
(३) मानवीय उद्यम के किसी भी क्षेत्र में कोई भी आविष्कार,
(४) वैज्ञानिक खोजें,
(५) औद्योगिक अभिकल्पना,
(६) मार्का, सर्विस मार्क, तथा अन्य वाणिज्यिक नाम तथा अभिधान,
(७) अन्यायपूर्ण प्रतिस्पर्धा से रक्षा तथा बौद्धिक क्रियाशीलता से उत्पन्न अन्य सभी अधिकार जो औद्योगिक, वैज्ञानिक, साहित्यिक या कलात्मक आदि क्षेत्रों में हों। (अनुच्छेद २, VIII)

क्रमांक (१) में वर्णित सम्पदा, बौद्धिक सम्पदा की कापीराइट शाखा से सम्बन्धित है। क्रमांक (२) में उल्लिखित सम्पदा 'पड़ोसी अधिकार' में कही जाती है। वे अधिकार जो कापीराइट के आसपास हों। (३), (५), (६) में उल्लिखित वस्तुएं बौद्धिक सम्पदा की औद्योगिक सम्पदा शाखा में आती हैं। क्रमांक (७) में वर्णित वस्तुएं भी इसी शाखा में समझी जाती हैं। क्रमांक (४) में वर्णित वस्तुएं बौद्धिक शाखा में वर्णित दोनों में से किसी के अन्तर्गत नहीं आतीं।

वैज्ञानिक खोजों को इनमें सम्मिलित नहीं किया जाना चाहिए था क्योंकि कोई भी राष्ट्रीय अधिनियम या अन्तरराष्ट्रीय संधि वैज्ञानिक खोजों के लिए कोई सम्पदा या अधिकार नहीं देते। वैज्ञानिक खोजें तथा आविष्कार एक ही चीज नहीं हैं। एक वैज्ञानिक खोज वास्तव में भौतिक

विश्व के किसी चमत्कार, गुण या नियम की पहचान करना है जिसकी कि अब तक पहचान नहीं की जा सकी हो और उसका सत्यापन किया जा सके।

एकस्व (पेटेन्ट) कानून

एकस्व या अंग्रेजी में पेटेन्ट सरकारी कार्यालय द्वारा जारी एक दस्तावेज होता है जो किसी आविष्कार का वर्णन करते हुए ऐसी कानूनी परिस्थिति उत्पन्न करता है जिसमें कि एकस्वित आविष्कार का सामान्यतः उसके अधिकारी की अनुमति से ही उपयोग किया जा सकता है। उपयोग में उसका उत्पादन, खपत, विक्रय तथा आयात आदि शामिल हैं। आविष्कार की समय सीमा कानून द्वारा निश्चित की जाती है। जो ५ वर्ष से २० वर्ष तक हो सकती है।

एकस्व (पेटेन्ट) वास्तव में सरकार द्वारा आविष्कारक को दिया गया एक कानूनी अधिकार है। आविष्कारक द्वारा यह अधिकार किसी अन्य व्यक्ति को भी प्राप्त हो सकता है। यह कानून एकस्वित वस्तु अथवा प्रक्रिया के उत्पादन, उपभोग और बिक्री से अन्य व्यक्तियों को प्रतिबन्धित रखता है। और इसकी समयावधि निश्चित होती है।

एकस्व के भेद

प्रक्रिया सम्बन्धी और उत्पाद सम्बन्धी एकस्व में सामान्यतः भेद किया जाता है। उदाहरणतः एक नयी प्रकार की मिश्र धातु का आविष्कार 'उत्पाद सम्बन्धी एकस्व' के अन्तर्गत आएगा जबकि किसी ऐसी मिश्र धातु जिसकी जानकारी पहले से हो, या न भी हो किसी नयी प्रक्रिया द्वारा उत्पादन 'प्रक्रिया सम्बन्धी एकस्व' के अन्तर्गत आएगा। ये दोनों प्रकार के एकस्व क्रमशः **'उत्पाद आविष्कार का एकस्व'** और **'प्रक्रिया आविष्कार एकस्व'** कहलाते हैं।

यदि कोई व्यक्ति उस आविष्कार (या उस प्रक्रिया) का दोहन करना चाहे तो उसे पहले उस एकस्व के स्वामी (एकास्वाधिकारी) की अनुमति लेनी होगी। यदि कोई व्यक्ति बिना अनुमति के उसका दोहन करता है तो

वह कानूनन अपराध करता है। यह समझना महत्वपूर्ण है कि एकस्वाधिकारी को अपने आविष्कार के बिना अनुमति दोहन के विरुद्ध रक्षा प्राप्त है। यह रक्षा निश्चित समय के लिए ही होती है।

आविष्कार, मार्का (ट्रेडमार्क) तथा औद्योगिक अभिकल्पना क्या है ?

कोई भी अन्तर्राष्ट्रीय संधि इन अवधारणाओं को परिभाषित नहीं करती और विभिन्न राष्ट्रों के नियम-अधिनियम इन विषयों पर आपस में महत्वपूर्ण भिन्नताएं रखते हैं। विभिन्न प्रकार की औद्योगिक सम्पत्ति की कोई सर्वमान्य परिभाषा देना सम्भव नहीं है। किन्तु फिर भी इन अवधारणाओं के अधिसंख्य सामान्य गुणों की ओर अवश्य इंगित किया जा सकता है।

आविष्कार

आविष्कार वह विशेष विचार या संकल्पना है जिससे तकनीकी क्षेत्र में किसी विशेष समस्या के हल को प्रायोगिक रूप में लाया जा सकता है। आविष्कार किसी विशेष तकनीकी समस्या नया समाधान है। 'नवीनता' ही वह विचार है जिसकी आविष्कारों से सम्बन्धित कानूनों में रक्षा की जानी चाहिए। इसका तात्पर्य यह है कि वह पहले से प्रकाशित या जन उपयोग में नहीं होना चाहिए। उस विशेष औद्योगिक क्षेत्र के विशेषज्ञों को वह पहले न सूझा हो, जबकि उन्हें उस समस्या का समाधान सोचने को कहा गया था, इस दृष्टि से वह आविष्कार पहले से अप्रकट होना चाहिए। उद्योग के क्षेत्र में वह तुरन्त प्रयोग किये जाने योग्य होना चाहिए। ये तीनों आवश्यकताएं एकस्विता (पेटेन्टेबिलिटी) की आवश्यकताएं कहलाती हैं।

मार्का (ट्रेडमार्क)

किसी व्यापारिक माल के लिए जनसामान्य के सम्मुख उत्तरदायित्व को तय करने वाले चिन्ह को मार्का कहते हैं। जनसामान्य यह निर्धारित करने के लिये कि किसी निर्माता का माल वह खरीदना चाहता है, मार्का

का प्रयोग करता है। मार्का वास्तव में उत्पाद पहचानने के काम आता है। सेवा मार्का (सर्विस मार्क) यही कार्य सेवा के क्षेत्र में करता है। यह चिन्ह किसी औद्योगिक अथवा वाणिज्यिक उद्यम अथवा ऐसे उद्यमों के समूह का हो सकता है। यह चिह्न एक या अधिक विशेष शब्दों, अक्षरों, अंकों, रेखाओं चित्रों अथवा हस्ताक्षरों, रंगों, रंगमिश्रणों, और कुछ अधिनियमों के अनुसार कुछ अन्य चीजों जैसे उत्पाद के नमूनों आदि का भी हो सकता है। मार्का सबसे अलग ही नहीं, अपितु सुस्पष्ट भी होना चाहिए।

औद्योगिक अभिकल्पना (इंडस्ट्रियल डिजाइन)

प्रयोग में आने वाली विभिन्न वस्तुओं का अलंकरण वाला भाग औद्योगिक अभिकल्पना कहलाता है। यह अलंकरण त्रिआयामी या द्विआयामी हो सकता है किन्तु इसका निर्धारण मात्र उस उपयोगिता के आधार पर नहीं हो सकता जिसके लिए वह वस्तु बनी है।

व्यापारिक अभिधान (ट्रेड नेम)

व्यापारिक अभिधान सामान्यतः वे नाम, शब्द या पदनाम होते हैं जो कि एक उद्यम की व्यापारिक गतिविधियों को अन्य उद्यमों से अलग करते हैं। व्यापारिक अभिधान एक समस्त उद्यम की पहचान होता है। यह आवश्यक नहीं कि उसमें उन वस्तुओं अथवा सेवाओं का कोई सन्दर्भ हो ही, जिन्हें कि वह उद्यम बाजार में लाता है। वह वास्तव में उस उद्यम की प्रतिष्ठा और साख को दर्शाता है।

विश्व बौद्धिक सम्पदा संगठन

'विश्व बौद्धिक सम्पदा संगठन' एक अन्तर सरकारी संगठन है। इसका मुख्यालय जिनेवा में है। यह संयुक्त राष्ट्र के संगठनों की व्यवस्था में अवस्थित सोलह 'विशेषज्ञ अभिकरणों' में से एक है।

'विश्व बौद्धिक सम्पदा संगठन' की स्थापना स्टॉकहोम में १४ जुलाई १९६७ को एक समझौते पर हस्ताक्षर किए जाने के बाद हुई। यह समझौता विश्व बौद्धिक सम्पदा संगठन की स्थापना का समझौता कहलाता है। इस संगठन का उद्गम १८८३ में हुए औद्योगिक सम्पत्ति संरक्षण के पेरिस

समझौते तथा १८८६ में हुए साहित्यिक तथा कलात्मक कार्य संरक्षण के बने समझौते में देखा जा सकता है।

पेरिस समझौता (२० मार्च १८८३)

पेरिस समझौता बहुद्देशीय आर्थिक समझौता था जो कि औद्योगिक सम्पत्ति, एकस्व, मार्का और अभिकल्पना जैसे अधिकारों की रक्षा के लिये किया गया था। २१ जनवरी १९९२ तक १०३ राष्ट्र इस समझौते पर हस्ताक्षर कर चुके थे। सन् १८८३ में सम्पन्न हुए इस समझौते में सन् १९०० में ब्रुसेल्स में, १९११ में वाशिंगटन में, १९२५ में हेग में, १९३४ में लन्दन में, १९५८ में लिस्बन में और १९६७ में स्टाकहोम में परिवर्तन किये गये। सन् १९७९ में भी इसमें बदलाव लाया गया।

बर्न समझौता (९ सितम्बर १८८६)

यह समझौता कापीराइट की सुरक्षा के लिये है। इसमें लाभान्वित होने वालों में लेखक, प्रकाशक, समाचार पत्र, पत्रिकाएँ, संगीतकार, चित्रकार, फोटोग्राफर, मूर्तिकार, फिल्म निर्माता तथा टेलीविजन के कार्यक्रमों के निर्माता शामिल हैं।

भारत ने भी इस समझौते पर हस्ताक्षर किये हैं। सन् १८८६ में तय हुए इस समझौते में पेरिस में १८९६ में, बर्लिन में १९०८ में, रोम में १९२८ में, ब्रूसेल्स में १९४८ में, स्टाकहोम में १९६७ में, पुनः पेरिस में १९७१ में विभिन्न परिवर्तन किये गये। सन् १९७९ में भी इसे बदला गया। २ जनवरी १९९२ तक ९० देश इस समझौते में शामिल हो चुके थे।

विश्व बौद्धिक सम्पदा संगठन संयुक्त राष्ट्र के अन्तर्गत ऐक विशेषज्ञ संगठन दिसम्बर १९७४ में बना।

ऐसा दावा किया जाता है कि यह संगठन अपनी सेवाएं आविष्कार, मार्का, औद्योगिक अभिकल्पना आदि के लिए भी उस स्थिति मे प्रदान करता है जब इनके संरक्षण की आवश्यकता कई देशों में होती है। अपने

सदस्य राष्ट्रों के मध्य यह संगठन प्रशासनिक स्तर पर परस्पर सहयोग बढ़ाने में मदद करता है ।

विश्व कापीराइट समझौते का संचालन संयुक्त राष्ट्र शैक्षणिक, वैज्ञानिक तथा सांस्कृतिक संगठन (यूनेस्को)द्वारा किया जाता है । पड़ोसियों के अधिकारों के रोम समझौते का पालन यूनेस्को तथा अन्तरराष्ट्रीय श्रम कार्यालय (आई०एल०ओ०)की सहायता से विश्व बौद्धिक सम्पदा संगठन करता है । इस समय यह संगठन निम्नलिखित समझौतों का संचालन कर रहा है। औद्योगिक सम्पत्ति के क्षेत्र में पेरिस यूनियन, मैड्रिड समझौता (माल के सही उद्गम के विषय में)मैड्रिड यूनियन (अन्तरराष्ट्रीय मार्का सम्बन्धी), हेग यूनियन (औद्योगिक अभिकल्पना के अन्तराष्ट्रीय संग्राहक के विषय में) नाइस यूनियन (मार्का पंजीकरण सम्बन्धी), लिस्बन यूनियन (अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अभिधान पंजीकरण एव सुरक्षा हेतु), एकस्व सहयोग समझौता यूनियन (अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर एकस्वों की सुरक्षा हेतु), अन्तराष्ट्रीय एकस्व वर्गीकरण यूनियन, विएना यूनियन, बुडापेस्ट यूनियन, नैरोबी समझौता (ओलम्पिक चिन्ह सुरक्षा) बर्न यूनियन (साहित्यिक व कलात्मक कृति संरक्षण हेतु), रोम समझौता(संगीत गायन आदि), जिनेवा समझौता(संगीत), ब्रुसेल्स समझौता(उपग्रह द्वारा प्रेषित संचार संरक्षण), चलचित्र पंजीकरण समझौता आदि । इसके अलावा यह संगठन पौधों की नई प्रजातियों के संरक्षण के लिए बने संघ को भी प्रशासनिक तथा आर्थिक सहायता प्रदान करता है ।

१९९९ में हुआ वाशिंगटन समझौता तथा मैड्रिड समझौता भी इसी संगठन द्वारा लागू किया जाएगा । इनमें पहला इलेक्ट्रानिकी के क्षेत्र में है और दूसरा मार्का सम्बन्धी ।

एकाधिकार का अर्थ

संरक्षण का अधिकार वास्तव में 'एकस्व' नामक अभिलेख में निहित नहीं होता अपितु उस देश के एकस्व कानून में होता है जहां कि उस आवि-

प्कार का एकस्व किया गया था। दोहन के एकाधिकार में सामान्यतः निम्नलिखित तत्त्व उपस्थित रहते हैं।

(क) उत्पाद एकस्व के मामले में उसे बनाने प्रयोग करने, बेचने, आयात करने और

(ख) आविष्कार की प्रक्रिया के एकस्व के मामले उस प्रक्रिया को प्रयोग करने का अधिकार जिससे उत्पाद बना, उसे बनाने का अधिकार, प्रयोग करने, बेचने और आयात करने आदि के अधिकार रहते हैं। आविष्कारक को यह अधिकार होता है कि उसका नाम एकस्व में रहे।

एक आकलन के अनुसार वर्ष १९९० में समस्त विश्व में लगभग ५ लाख ७० हजार एकस्व विभिन्न आविष्कारों के लिए सुरक्षित किये गये। इसके अलावा यह भी आकलन किया गया कि १९९०के अन्त तक लगभग ४६ लाख एकस्व प्रयोग में थे।

परिवर्तन का विरोध क्यों ?

स्वदेशी जागरण मंच भारतीय एकस्व अधिनियम में परिवर्तन का विरोधी इसलिये है, क्योंकि गैट में आये कुछ प्रस्तावों को मानने या संयुक्त राज्य की मांगों को मानने से विकट अनर्थ होगा। ज्ञातव्य है कि संयुक्त राज्य ने अपनी मांगे न मानने पर सुपर ३०१ नियम में भारत के विरुद्ध कारवाई की धमकी दी है।

जैसा कि इंडियन स्कूल आफ सोशल साइंसेज, मुम्बई द्वारा भी कहा गया है कि भारतीय एकस्व अधिनयम में परिवर्तनों के बहुत से परिणाम होंगे। उदाहरणतः इन परिवर्तनों के बाद उत्पादन एकस्व के अलावा विदेशी कम्पनियों को यह अधिकार भी देना होगा कि उत्पादन करना या न करना उनकी इच्छा पर निर्भर होगा। यद्यपि उन्होंने एकस्व यहां प्राप्त किया होगा। औषधियों के विषय में यह मामला और भी गम्भीर हो जाता है।

वास्तव में इन कम्पनियों का उस उत्पाद के आयात पर भी एकाधिकार हो जायेगा। तब मूल्यों के मामले में ये कम्पनियां घालमेल कर सकती

हैं। अपनी ही विदेशी कम्पनी से आयात करके जैसा पेप्सी ने मशीनों के सन्दर्भ में किया था। तब एक ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जायेगी जहां भारतीय कम्पनियों के पास तकनीक होगी, विशेषज्ञता होगी, साधन होंगे, उत्पादन की क्षमता होगी, भिन्न विधि भी होगी तो भी अपने ही देश में सस्ते मूल्य पर उप्पादन करने से ही अपने देश की न्यायपालिका द्वारा रोक दी जाएगी। औषधियों के क्षेत्र में तो इससे मूल्यवृद्धि ऐसी होगी कि लाखों भारतीय बिना औषधि के तड़प-तड़प कर मर जाएंगे।

किसानों के दुश्मन

इसी प्रकार कृषि के क्षेत्र में एकस्व लाने से लाखों किसानों के लिए गंभीर परिणाम होंगे। इसके अलावा इससे बीज और परिणामतः उपज की कीमतों में भयंकर वृद्धि होगी। हमारे अपने कृषक अपने बीज और पौध तैयार नहीं कर सकेंगे। यह कार्य अमरीकन किसानों के हाथ में चला जायेगा। हमारे कृषकों को बीज तथा पौध अमरीकन किसानों से उनके मुंहमांगे दामों पर खरीदना पड़ेगा। हमारे अपने बीज और पौध स्वयं हमें ही उनके द्वारा निर्धारित मूल्यों पर खरीदने होंगे। भारतीय कृषकों से अपना बीज बचाकर रखने का अधिकार तो इतिहास में कभी भी, यहां तक कि सर्वाधिक निरंकुश शासकों के राज्य में भी नहीं छीना गया।

इसके अलावा यदि विदेशियों को महत्वपूर्ण माल इस देश में आयात करने का एकाधिकार दे दिया गया, वह भी तब जब कि वे उसका भारत में उत्पादन नहीं करेंगे और भारतीय व्यापारी न तो उस माल का उत्पादन कर सकेगा और न ही उसे आयात, तो भारत के हजारों उद्योग ठप हो जाएंगे। इससे लाखों भारतीय बेरोजगार हो जायेंगे। यदि हमारे उद्योगों पर बीस वर्ष तक नवीन तथा आवश्यक तकनीक का प्रयोग करने पर प्रतिबन्ध लगा दिया जाए तो क्या वे बच सकेंगे ?

यदि हमारे गणितज्ञों पर यह प्रतिबन्ध लगा दिया जाए कि अमुक समीकरण का वह प्रयोग नहीं कर सकेंगे क्योंकि अमुक बहुराष्ट्रीय निगम का उस पर एकस्वाधिकार है तो हमारे विज्ञान, तकनीक, शोध और

विज्ञान का क्या हाल होगा ? हमारे शोध संस्थानों को उनकी सामान्य शोध गतिविधियों से भी वंचित कर दिया जायेगा ।

एकस्वाधिकारों का प्रयोग ज्ञान तथा उन आवश्यक साधनों का विनीकरण करने में किया जायेगा जो सामान्य जनता तथा वैज्ञानिकों को उपलब्ध रहे हैं ।

एकस्वाधिकारों का साम्राज्य पौधों, जीव-जन्तुओं, बीजों, गणित के समीकरणों, और यहां तक कि मानव शरीर के अंगों तक पर छा जायेगा । हम सभी पौध बनाने वालों के अधिकारों के गुलाम बन जायेंगे । संयुक्त राज्य तृतीय विश्व के देशों की कृषि का विनाश चाहता है, जो कि बाद में उसके कृषि उत्पादकों के लिए बाजार बन सकें ।

*

भारतीय एकस्व अधिनियम की मुख्य विशेषताएं

• खाद्य पदार्थों, औषधियों तथा रासायनिक विधि से तैयार वस्तुओं पर एकस्व उपलब्ध है, इसके अलावा अन्य सभी मामलों में उत्पाद पर ही एकस्व उपलब्ध होता है ।

• आणविक ऊर्जा, कृषि और उद्यान कृषि एकस्व से पूर्णतया मुक्त है ।

• एकस्व का कार्यकारी होना अनिवार्य है । अर्थात् चाहे व्यक्ति भारतीय हो अथवा विदेशी, उसे एकस्व का प्रयोग भारत के अन्तर उत्पादन में करना होगा ।

३० : स्वदेशी अपनायें

० भारतीय तथा विदेशी, उसे एकस्व का प्रयोग भारत के अन्दर उत्पादन में करना होगा ।

० भारतीय तथा विदेशियों में कोई अन्तर नहीं किया गया है।

० राष्ट्रीय हितों को एकस्वधारी के हितों से ऊपर रखा गया है । एकस्व के साथ ही अनिवार्यत: लाइसेन्स प्रदान किया जाता है जिससे कि एकस्व कार्यकारी हो जाये । यदि कोई एकस्वाधारी अपने लाइसेन्स का प्रयोग नहीं करता तो किसी अन्य को उस वस्तु का उत्पादन करने का लाइसेन्स दिया जा सकता है ।

० स्वचालित 'अधिकार का लाइसेन्स' भारतीय अधिनियम की एक और विशेषता है । यह खाद्य पदार्थों तथा औषधियों के क्षेत्र में जन हित रक्षार्थ बनाया गया है। यदि कोई एकस्वाधिकारी अपने उत्पाद की उपलब्धता तथा उचित मूल्य के विषय में जागरूक नहीं है, या उसका उत्पादन नहीं करता तो तीन वर्ष बाद कोई भी अन्य उस उत्पाद का उत्पादन कर सकता है।

० खाद्य पदार्थों, औषधियों तथा रासायनिक विधि से तैयार उत्पादों के एकस्व के अलावा अन्य सभी एकस्व भारत में १४ वर्ष पश्चात् समाप्त हो जाते हैं। खाद्य पदार्थों, औषधियों तथा रासायनिक विधि से तैयार उत्पादकों के मामले में यह अवधि एकस्व के लिये दिये गये प्रार्थना पत्र की तिथि से ७ वर्ष या एकस्व दिये जाने की तिथि से ५ वर्ष, इनमें जो तिथि पहले पड़ जाये, के आधार पर तय होती है।

१९७० के एकस्व अधिनियम के अलावा जो अन्य भारतीय कानून बौद्धिक सम्पदा की रक्षा करते हैं, वे हैं:

- भारतीय व्यापार तथा उत्पाद मार्का अधिनियम, १९५८ .
- अभिकल्पना अधिनियम, १९११
- कापीराइट अधिनियम, १९५७

कैसे बनेगा ऋण मुक्त भारत

डा० मुरली मनोहर जोशी
अध्यक्ष, भारतीय जनता पार्टी

ऋण के बोझ से दबे भारतवर्ष की समस्या को समझने के लिए आजादी के १०० वर्ष पूर्व की स्थिति पर विचार करना होगा। भारत हमेशा कर्जदार नहीं रहा है। इसे सोने की चिड़िया कहा जाता था। लोग इसकी सम्पत्ति को लूटने का प्रयास करते थे। इस देश को अनेक बार लूटा गया। मथुरा, सोमनाथ, दिल्ली, काशी और दक्षिण में श्रीरंगपट्टनम को लूटा गया। उसके बाद नादिरशाह, चंगेज खां आदि ने भी इसे लूटा। तख्ते-ताऊस यहां से चला गया, कोहिनूर चला गया। उस जमाने की करोड़ों दीनार की मूर्तियां, सोने-चांदी, हीरे-जवाहरात सब चले गये।

ऐसा कहते हैं कि जब गजनी में हिन्दूस्थान की लूट की प्रदर्शनी लगाई गई तो उसमें बड़े-बड़े शीशे के बर्तनों में लाल रंग के माणिक को भरकर उस पर हीरों को सजाकर रखा गया था। उसे देखकर ऐसा लगता था कि मानो शीशे के बर्तनों में लाल शराब पर बर्फ तैर रही हो। मुस्लिम लुटेरों द्वारा लूटी गई देश की सम्पत्ति का यह हाल था। लेकिन ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा तो राजनीतिक और आर्थिक दृष्टि से भारत को पंगु बनाने के लिए सोच-समझ कर लूटा गया। पहली लूट में तो विदेशी आए, एक बार लूट कर चले गये। लेकिन लूट का दूसरा तंत्र इस देश में हमेशा के लिए आ गया जिसमें ऐसी व्यवस्था बनाई गई कि इस देश की

पूंजी निरंतर इंग्लैण्ड को जाती रहे । ईस्ट इण्डिया कम्पनी के नौकर सालाना २५ करोड़ रुपये की पूंजी उस जमाने में भारत से इंग्लैण्ड को स्थानांतरित करते थे । प्लासी और वाटरलू की लड़ाई के बीच ५५ साल में लगभग एक हजार मिलियन पौण्ड (१५ अरब रू०) ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने यहां से स्थानांतरित किये, और २५ करोड़ रुपये सालाना तो उसके कर्मचारी यहां से ले ही जाते थे । कुल मिलाकर लूट का यह तंत्र इस तरह से शुरू हो गया कि लूटने की एक व्यवस्था बन गई । जो बाद में नियमित और सुव्यवस्थित पूंजी स्थानांतरण के रूप में विकसित कर ली गई । उदाहरण के लिए किसानों के लगान लगातार बढ़ते चले गए।

मुगल शासन के अन्त और अंग्रेजी शासन की शुरुआत (१७६५-६६) से द्वितीय विश्व युद्ध (१९३६-३७) के बीच लगान में हुई वृद्धि के आंकड़े- ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा एक वर्ष में ही लगान में की गई वृद्धि और उसके बाद लगातार लगान बढ़ाते चले जाने से पता चलता है कि मुगलों की तुलना में अंग्रेजों ने भारतीय किसानों का खून कितनी निर्ममता से चूसा ।

वर्ष		राशि पौण्ड में
१७६४-६५	मुगल शासन	८१,८,००
१७६५-६६		१,४७०,०००
१७९३-९४		३,०९१,०००
१८५२-५८		१५,०३०,०००
१९००-०१		१७,०५०,०००
१९११-१२		२०,०००,०००
१९३६-३७		२३ ९००,०००

आंकड़े स्पष्ट करते हैं कि किस तरह मुगलकाल के अन्तिम वर्ष से लेकर अंग्रेजों के भारत छोड़ने से कुछ पहले तक किसानों से लगान वसूलने की माला बढ़ती चली गई । लगान में बेतहाशा वृद्धि और भारत के कृषि और अन्य उद्योगों में किसी पूंजी का निवेश न होना, इससे भारत में आर्थिक

विकास की प्रक्रिया पर ही प्रतिबन्ध लग गया। यह एक बहुत महत्वपूर्ण बात है और हमें इसको अच्छी तरह से समझना चाहिए कि अगर प्लासी की लड़ाई के बाद अंग्रेज यहां से लूटकर पूंजी का स्थानांतरण नहीं करते तो न तो उनके यहां औद्योगिक क्रान्ति हो सकती थी और न जेम्सवाट का इंजन आ सकता था। इन सबके लिए पूंजी भारत से गई। यह आज सिद्ध किया जा सकता है कि जिस वर्ष प्लासी की लड़ाई हुई उस वर्ष वहां एक उद्योग लगा। जब यहां के किसी राज्य को हस्तगत किया तो वहां दूसरा उद्योग खुला। जब उन्होंने यहां लगान बढ़ाया तो वहां विकास का अमुक कार्य हुआ। इस प्रकार यदि पूरा हिसाब लगाएं तो हम देखेंगे कि इंग्लैण्ड जब हमारे ऊपर राज करने आया था, तो उद्योग और तकनालॉजी की दृष्टि में उसकी हालत बहुत विकसित नहीं थी। लेकिन हमारे अर्थतंत्र पर उनका शिकंजा कस जाने के बाद, यहां से पूंजी का पलायन वहां होने लग जाने के कारण सुनियोजित ढंग से भारत का खून चूसा गया। कई बार जब यह कहा जाता था कि यह जो रेलगाड़ियां चलाई जा रही हैं, सड़कें बनाई जा रही हैं ये भारत की आम जनता के विकास के लिए नहीं, बल्कि यहां से कच्चे माल को सुविधापूर्वक बाहर ले जाने के लिए हैं, तो यह गलत नहीं कहा जाता था। यह उनका एक बहुत महत्वपूर्ण उद्देश्य था। बाकी संचार व्यवस्था का विकास और लोगों की सुविधा के काम तो भारत के ही उत्पादन थे। अर्थात् डेढ़ सौ वर्ष तक एक ऐसी शोषक शासन व्यवस्था रही, जिसमें १८५७ से १९४७ तक का जो सौ वर्ष है वह सीधा ब्रिटिश संसद और वहां के तंत्र के माध्यम से सुनियोजित रूप से चलता रहा। और यहां से पूंजी का पलायन होता रहा। यह हमारे अविकसित होने या गरीब होने का एक कारण था। लेकिन तब भी देश, विदेशों का कर्जदार नहीं था। सरकार के ऊपर घरेलू जिम्मेदारियां तो थीं लेकिन विदेशी कर्ज की देनदारी नहीं थी।

'नेहरू माडल' का कुपरिणाम

जब अंग्रेजों ने देश छोड़ा, उस समय देश साहू कार था। ३ हजार

करोड़ रूपये से अधिक की विदेशी मुद्रा उस समय देश में थी। उस समय की अर्थव्यवस्था को देखने से पता चलता है कि इतनी विदेशी मुद्रा की क्रय शक्ति उस समय बहुत बड़ी थी। अगर उसका सदुप्रयोग ठीक ढंग से करते तो शायद काफी कुछ किया जा सकता था। मगर देश के नेताओं को इस-का ज्ञान नहीं था कि हमारी गरीबी का कारण क्या है? उन्होंने केवल पश्चिमी अन्धानुकरण में ही इसका उपाय खोजा कि जिस रास्ते से पश्चिम के देश आगे बढ़ रहे हैं उसी रास्ते पर चलकर देश का भला किया जा सकता है। इसलिए जो आर्थिक नीति नेहरू जी के समय में अपनायी गई, उसमें ऐसे आर्थिक उपायों का सहारा लिया गया जिसमें अधिक पूंजीनिवेश हो। लेकिन पूंजी तो थी नहीं। बहुत सारी पूंजी बाहर चली गई थी। अब पूंजी के निर्माण के बगैर आप पूंजी कहां से ला सकते हैं? पूंजी निर्माण कैसे कर सकते हैं? इसके लिए इस देश की क्षमताओं, सम्भावनाओं, संसाधनों और यहां के इतिहास को जानना बहुत जरूरी था। मगर दुख तो यही है कि नेहरू जी इन सारे मामलों को नहीं जानते थे। उस समय यहां जो प्रशासन तंत्र था वह भी ऐसे लोगों के हाथ में था, जो भारत की मुख्यधारा से ज्यादा नहीं जुड़े थे। भारतीय नागरिक सेवा (आई०सी०एस०) के अधिकारियों की शृंखला इस देश के शासन तंत्र को संभाले हुए थी। उनमें से बहुत कम लोग ऐसे थे जो इन बातों को समझते थे। नतीजा यह हुआ कि हमारे देश में पंचवर्षीय योजनाओं का सिलसिला शुरू किया गया और पंचवर्षीय योजना शुरू होते ही, यानी १९५१-५२ में ही देश में जो ३ हजार करोड़ की विदेशी मुद्रा थी वह सब उसमें खर्च कर दी गई। इतना ही नहीं, विदेशी कर्ज की शुरुआत भी हो गई। पहली बार ३० करोड़ के लगभग विदेशी कर्ज लिया गया। और फिर धीरे-धीरे कर्ज लेने की प्रक्रिया बढ़ती ही गयी। वह इन आंकड़ों से ही स्पष्ट हो जाता है।

कर्ज का चक्र

पहली योजना के अन्त में २१० करोड़ रूपये का विदेशी ऋण था। उसमें

से २४ करोड़ रुपये ब्याज भुगतान या किस्त भुगतान में चला गया, लेकिन दूसरी योजना में यही कर्ज राशि १४२० करोड़ रुपये हो गई, और ११९ करोड़ का ब्याज भुगतान किया गया और फिर तीसरी योजना के अन्तर्गत उपयोग हुआ विदेशी ऋण २८७७ करोड़ रुपये था उसमें से ५४२ करोड़ रुपये ब्याज भुगतान में चले गये। फिर १९६६ से १९६९ तक की तीन वार्षिक योजनाएं थी। उसमें विदेशी ऋण, जिसका 'सहायता' नाम गलत है वह ३२३० करोड़ रुपये हो गया, और उसमें से ९८३ करोड़ रुपये ब्याज भुगतान में चले गये। चौथी योजना में यह राशि ४१८४ करोड़ थी उसमें से ब्याज और परिशोधन का भुगतान २४४५ करोड़ था। इस प्रकार कुल कर्ज का लगभग ५८ प्रतिशत हमने ब्याज या किस्त चुकाने के लिए दिया। केवल ४२ प्रतिशत ही हम वास्तव में अपनी योजना के कार्य में लगा पाए। फिर पांचवी योजना के अंत में कर्ज ७२५९ करोड़ हो गया और उसमें से ३६८३ करोड़, अर्थात् ५० प्रतिशत के लगभग ब्याज में चला गया। फिर छठी योजना के अन्तर्गत ११२५६ करोड़ रुपये विदेशी ऋण हो गया। और उसमें से भी ५ हजार करोड़ रु० ब्याज भुगतान और परिशोधन में चले गये। अतः कुल मिलाकर यह राशि बढ़ती चली गई। यानी योजना का जो आकार है वह इस बात का सबूत है कि योजना को पूरा करने के लिए कर्जा लिया। और कर्ज चुकाने के लिये फिर कर्जा लिया। और कर्ज पर चढ़ते ब्याज और फिर ब्याज चुकाने के लिर फिर कर्ज। इस प्रकार हमारे कर्ज की राशि लगातार बढ़ती चली गई। स्वतंत्रता के बाद जो दूषित अर्थव्यवस्था अपनायी गई यह उसी का परिणाम था।

दोषपूर्ण नीतियों का असर

इस प्रकार के कर्ज का मौजूदा आयाम यदि देखा जाए तो वह बहुत ही भयानक है। इस समय भारत पर जो विदेशी कर्ज है वह सन् ९२-९३ में २ लाख ४० हजार करोड़ हो जायेगा। और स्वदेशी यानी घरेलू ऋण कुल मिलाकर ३ लाख १८ हजार। भारत सरकार की कुल देनदारी इस समय ५ लाख ५८ हजार करोड़ रुपए है। इस समय भारत की जनसंख्या

६० करोड़ मान लें तो हर भारतवासी ६ हजार रुपए का कर्जदार है। जो बच्चा कल पैदा होगा वह ६ हजार रुपए का कर्जा अपने सिर लेकर पैदा होगा।

भारत सरकार पर १९८०-८१ में जो अन्दरूनी कर्ज ३१ करोड़ था वह ९१-९२ में बढ़कर एक लाख ७० करोड़, यानी छह गुना हो गया। इसी प्रकार इसके अन्तर्गत अगर और अन्दरूनी देनदारियां जोड़ी जाएं तो ४८ हजार करोड़ तो भविष्यनिधि और छोटी बचत आदि का है। शेष उधार १७ हजार करोड़ का है। सन् ८०-८१ में ४८ हजार करोड़ रुपये की स्वदेशी देनदारियां थीं, जो आज बड़कर ३ लाख १८ हजार करोड़ हो गई। इस प्रकार जो पहले कर्ज था वह सकल घरेलू उत्पाद का ३५ प्रतिशत था, किन्तु आज यह बढ़कर ५२ प्रतिशत हो गया। इसी तरह से सन् १९९०-९१ में सरकार के हिसाब से यह कर्ज ६६ हजार करोड़ रुपये था। पिछले साल यह बढ़कर १ लाख ३५ हजार करोड़ रुपये हो गया और रुपये के अवमूल्यन से तो बिना कुछ लिए दिए ही यह २ लाख ४० हजार करोड़ रुपये हो गया।

डालर का चक्कर

अब अगर डालर में यह कर्ज दिखाया जाये तो ज्यादा नहीं लगता। सरकार यही घपला करती है कि वह अपना हिसाब डालर में दिखा देती है। डालर का तो अवमूल्यन होता नहीं। और रुपये का अवमूल्यन हो जाने के कारण उतने ही डालर चुकाने के लिए ज्यादा मेहनत करनी पड़ती है। पहले डालर का मूल्य १८ रुपए प्रति डालर था, अब यह लगभग ३० रुपये प्रति डालर हो गया है। रुपये के अवमूल्यन से ही इसका मूल्य बढ़ गया। इसके अनुसार पहले जो विदेशी ऋण सकल घरेलू उत्पादन का १० प्रतिशत था, आज सकल घरेलू उत्पाद का ४० प्रतिशत है। अतः ४० प्रतिशत यह और ५२ प्रतिशत का उल्लेख पहले किया गया है। अर्थात् कुल ९२ प्रतिशत। यानी हमारे आर्थिक कर्जे की मात्रा आयतन के रूप में देखें तो उतनी ही है जितनी रूस की। अर्थात् रूस का जैसा विध्वंस हुआ हम

भी उसी ओर बढ़ रहे हैं। और आज भी भारत की वर्तमान अर्थव्यवस्था के कारण हमें जो कर्जों की आवश्यकता पड़ेगी, वह कम भयानक नहीं हैं। आने वाले ५ वर्षों तक हमें प्रतिवर्ष १० बिलियन डालर का कर्ज लेना पडेगा। यानी, ५० बिलियन डालर का कर्ज तो कम से कम लेना ही पड़ेगा हमको बाहर से। इस प्रकार देश पर सन् १९९७ तक कुल १३० बिलियन डालर या ४ लाख करोड़ रुपये का विदेशी कर्ज लद जायेगा। आज स्वदेशी और विदेशी मिलकर ५ लाख ५८ हजार करोड़ का कुल ऋण है। जो १९९७ तक सामान्यतौर पर १० लाख करोड़ रुपये तक पहुंच जायेगा। अर्थात् भारतवर्ष के सामान्य आदमी पर कर्ज आज से दो गुना हो जायेगा। इससे ऐसा लगता है कि नीति-निर्धारकों द्वारा देश की अर्थ व्यवस्था में पूंजी जुटाने का जो उपक्रम किया गया है वह काफी दोषपूर्ण रहा है। इसका सीधा सा कारण है पश्चिमी जीवन, पश्चिमी संस्कृति और पश्चिमी जीवन मूल्यों को भी पश्चिमी ऋण के साथ-साथ लोगों के जीवन में उतारना, जिसके परिणामस्वरूप एक उपभोक्तावादी समाज का रूप धारण करने के लिए देश मजबूर हो गया है।

दिशा और दृष्टि में परिवर्तन

वर्तमान परिस्थितियो में यदि भारत को कर्जमुक्त होना है तो आर्थिक विकास की दिशा और दृष्टि दोनों बदलनी पडेंगी।

इस समय दुनिया के धनी देशों ने जो जीवन-स्तर प्राप्त कर लिया है उसे बनाये रखने के लिए उन्हें पूंजी. ऊर्जा और कच्चा माल चाहिए। उन्होंने इसका एक सस्ता रास्ता भी निकाल लिया है। वह यह कि कहीं से कच्चा माल जुटाकर माल तैयार किया जाए। उस तैयार माल को बेचने के लिए बाजार बनाना चाहते हैं तीसरी दुनिया के गरीब देशों को।

अर्थात उनकी अर्थव्यवस्था का सीधा नियम है सस्ता कच्चा माल प्राप्त करके सस्ते दर पर पूंजी लगाकर तीसरी दुनिया के देशों में ऊंचे दर पर अपने माल की बिक्री करना। इस प्रकार उनका टर्म्स आफ ट्रेड (व्यापारिक शर्तें) गरीब देशों के विरुद्ध काम करती हैं। आज स्थिति यह है कि

तीसरी दुनिया के देशों पर १९६९ में केवल ५४ बिलियन डालर का कर्ज था, १९८५ में यह बढ़कर ८०० बिलियन डालर हो गया, और इस समय १९९१-९२ में यह कर्ज कुल मिलकर लगभग १५०० बिलियन डालर हो हो गया है। यह जो १५०० बिलियन डालर या इससे भी अधिक रुपया अविकसित देशों से चला गया है वह कभी वापस होने वाला नहीं है। अविकसित देशों से पूंजी विकसित देशों की तरफ जा रही है। इस अर्थतंत्र में गरीब या अविकसित देश हमेशा ऋणग्रस्तता के चक्कर में पड़े रहेंगे। वे इससे मुक्त हो ही नहीं सकते। बंधुआ मजदूरों वाली पुरानी परिपाटी अब अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर काम कर रही है।

जब तक इस बात को नहीं समझा जाएगा और देश के अर्थतंत्र को इस दुष्चक्र से मुक्त नहीं कराया जायेगा, तब तक भारत विकसित देश का रूप नहीं ले पायेगा। इसलिए पहली बात तो यह कि भारत को अपना अर्थतंत्र सुदृढ़ करना होगा। जब तक देश का आन्तरिक अर्थतंत्र सुदृढ़ नहीं होगा, तब तक अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर खड़े होने लायक स्थिति नहीं हो सकती। यह देखा गया है कि भुगतान सन्तुलन को ठीक करने के नाम पर आर्थिक नीति नियंताओं द्वारा कर्ज लेने को उचित ठहराने के कुतर्क दिये जाते हैं। परन्तु सवाल उठता है कि ये भुगतान असंतुलन हुआ क्यों? इसके जवाब में वे कहते हैं कि हमारे देश से निर्यात कम होता है आयात अधिक होता है इसलिए भुगतान असंतुलन की स्थिति पैदा हुई। उनकी इस बात पर आम आदमी भी यह सोचता है कि ठीक है, निर्यात बढ़ाने से यह समस्या दूर हो जायेगी इसलिए निर्यात बढ़ाओ। लेकिन जब तक इस बात की छान-बीन नहीं की जाती कि किस वस्तु की खपत विदेशी बाजार में हैं तब तक निर्यात बढ़ाने की बात केवल आत्म-सन्तोष ही मानी जायेगी। इससे देश की अर्थव्यवस्था पर कोई महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ने की उम्मीद नहीं है। इस तरह की बातों से ऋणजाल से मुक्त होना सम्भव भी नहीं है।

इस आयात-निर्यात की प्रक्रिया को ध्यान से देखने पर पता चलता है

कि आयात-निर्यात में जो अन्तर है, उसका बहुत बड़ा कारण पेट्रोलियम पदार्थों का आयात है। १२००० करोड़ से लेकर १८००० करोड़ रुपयों की रकम पेट्रोलियम पदार्थों की खरीद पर खर्च होती है। इतना खर्च इस मद पर क्यों किया जाता है? क्या पेट्रोलियम पदार्थों का कोई विकल्प नहीं हो सकता? आखिर इस देश में इतनी ज्यादा मात्रा में गन्ना पैदा होता है और बहुत अधिक मात्रा में गन्ने का शीरा बरबाद जाता है।

पिछले दिनों बिहार के बैशाली जनपद में गोरौल चीनी मिल द्वारा ६० हजार बिबटल गन्ने का रस सिर्फ इसलिए बहा दिया गया क्योंकि पेराई के बाद उससे चीनी का उत्पादन नहीं किया जा सका। यह तो मात्र एक उदाहरण है।

गन्ने के रस से और इसके शीरे से भी हर्म पावर एल्कोहल बना सकते हैं, पावर एल्कोहल से बहुत अच्छी तरह गाड़ियां चला सकती हैं। ब्राजील इसी बिधि से अपने यहां गाड़ियां चला रहा है। ब्राजील भी उसी संकट में फंसा हुआ है जिसमें भारत है।

गन्ना भारत की कृषि उपज है, और भारत दुनिया का सबसे बड़ा गन्ना उत्पादक देश है। उत्तर प्रदेश, बिहार, आन्ध्रप्रदेश और महाराष्ट्र में बहुत बड़ी मात्रा में गन्ना पैदा होता है। कई बार तो किसान का गन्ना खराब हो जाता है, जल जाता है। यदि सरकार ने इस तरफ ध्यान दिया होता और आज भी दे, तथा लोगों को यातायात व्यवस्था में पेट्रोलियम पदार्थों के बजाय पावर एल्कोहल का उपयोग करने के लिए प्रोत्साहित करे तो दो-तीन वर्ष में ही आयातित पेट्रोल पर देश की निर्भरता काफी कम हो सकती है। यदि इस प्रकार यह खर्च ५० प्रतिशत भी घट गया तो ८-९ हजार करोड़ रुपये वार्षिक की बचत आसानी से हो सकती है। यह बहुत बड़ी बचत होगी। क्योंकि पेट्रोलियम पदार्थों को खरीदने के लिए हमें विदेशी मुद्रा में ही सारी कीमत चुकानी पड़ती है। इन तथ्यों से एक बात तो हो गई कि जब तक देश की समस्याओं का विश्लेषण करके, ऐसे

समाधान नहीं खोजे जाएंगे तब तक देश को भुगतान के संकट से मुक्त नहीं कराया जा सकता।

भुगतान संतुलन का दिखावा

जब कर्जमुक्त भारत की परिकल्पना करते हैं तो कई और सवाल भी उपस्थित होते हैं जैसे क्या देश का भला श्रृंगार प्रसाधनों और बड़ी-बड़ी मशीनों के आयात से होगा ? और जिन बड़े उद्योगों के लिए बड़ी-बड़ी मशीनें बाहर से आई, उनसे बने माल का कितना प्रतिशत निर्यात हुआ? यदि विदेशी पूंजी लगाकर यहां कोई उद्योग लगाया गया, तो उससे कितनी विदेशी मुद्रा अर्जित हुई? यदि नहीं, तो क्यों; वास्तव में देश आज भी अपने पुराने परम्परागत निर्यात द्वारा ही विदेशी मुद्रा अर्जित कर रहा है। प्रमुख रूप से कपड़ा उद्योग, चर्म उद्योग,आभूषणों, कृषि उत्पादन और कच्चे माल पर ही सम्पूर्ण निर्यात का ७० प्रतिशत निर्भर करता है। इन सभी क्षेत्रों में बहुत सम्भावनाएं भी हैं। यदि इन सम्भावनाओं पर रचनात्मक दृष्टि से विचार करके इन क्षेत्रों को सुदृढ़ किया जाए तो देश की आर्थिक स्थिति मजबूत करने में इनका बहुत लाभ उठाया जा सकता है। यदि देश के कृषि क्षेत्र को सुदृढ़ किया जायेगा तो निश्चित ही अर्थ व्यवस्था भी सुदृढ़ होगी, लोगों को रोजगार भी मिलेगा और साथ ही अन्तर्राष्ट्रीय बाजारों में एक प्रतिस्पर्धी के रूप में देश खड़ा हो सकेगा। इसी प्रकार भारी मात्रा में मत्स्य उत्पादन करके निर्यात कर विदेशी मुद्रा कमा सकते हैं। देश के पास इतना बड़ा समुद्री तट है, इतनी नदियां हैं, इतना जल है कि इस क्षेत्र में बहुत लाभ कमाया जा सकता है। ऐसे तमाम क्षेत्र हैं, जिनके आधार पर अपना निर्यात पक्ष मजबूत कर सकते हैं।

आत्मनिर्भरता का उदाहरण

आज भी होजरी वस्त्र के मामले में तिरुपुर जैसा छोटा कस्बा २०० से ३०० करोड़ की विदेशी मुद्रा अर्जित कर रहा है और विदेशी मुद्रा का खर्च उनके पास बहुत कम है। जब कि तिरुपुर वालों को पानी तक बाहर से खरीदना पड़ता है। ५०,००० रुपये का पानी जिस कारखाने

को खरीदना पड़ता हो, इसके बावजूद वह स्पर्धा में रहता हो तो यदि ऐसे केन्द्रों को हम सुदृढ़ करें तो बहुत अधिक मात्रा में हम विदेशी मुद्रा अर्जित कर सकते हैं। यदि तिरुपुर केन्द्र को ही हम मजबूत करें तो यहां से प्राप्त होने वाली मुद्रा १००० करोड़ तक पहुंच सकती है। लुधियाना, सूरत आदि से भी बड़ी मात्रा में विदेशी मुद्रा प्राप्त हो सकती है। यदि इस प्रकार के ८-१० केन्द्रों को मजबूत कर दिया जाय तो ८-१० हजार करोड़ का घाटा इन क्षेत्रों से पूरा किया जा सकता है। इस प्रकार भुगतान संतुलन तो बराबर हो ही सकता है। बल्कि और कर्ज लेने की स्थिति से भी देश को बचाया जा सकता है। फिर धीरे-धीरे इस प्रक्रिया को उलट भी सकते हैं।

दृढ़ संकल्प की जरूरत

किन्तु इसके पहले सरकार को यह संकल्प लेना होगा कि अब हम कर्ज नहीं लेंगे। आगे कर्ज न लेने के बारे में राष्ट्र की दृढ़ इच्छाशक्ति प्रकट होनी चाहिये। फिर इस कर्जे को न लेने के लिये चाहे जितने कठोर उपाय करने पड़ें वह करना चहिये। फिर तीसरी बात यह आती है कि हम इस कर्जे का भुगतान करना शुरू करें। और यह योजना भी देश के सामने स्पष्ट होनी चाहिये कि हम दो, तीन, पांच या दस वर्षों में देश को कर्ज से मुक्ति दिला देंगे। और फिर आने वाले दस वर्षों में इस देश को और ऊंचाई पर ले जाएंगे। राष्ट्र के सामने आत्मविश्वास भरा एक चित्र जब तक नहीं आयेगा, तब तक देश इस कर्ज से मुक्त नहीं हो सकता।

कर्ज तो अफीम है एक बार आदत पड़ गई कि मुझे तो देना नहीं है अपनी पीढ़ी को देना है तो वह कर्जमुक्त नहीं हो सकता। बहुत से लोगों का विचार है कि भारत शायद बहुत गरीब देश है, किन्तु ऐसा नहीं है। सारा देश तो बहुत धनी है किन्तु नेतृत्व बहुत निर्धन है। सामान्य तौर पर जिस देश के पास १०,००० टन से २०,००० टन के बीच सोने की मुद्रा होने की बात की जाती हो, उस देश को गरीब कैसे कहा जा सकता

है? जिस देश की भूमि का ५०–५२ प्रतिशत भाग कृषि योग्य हो वह गरीब कैसे रह सकता है? जिस देश के पास पयस्विनी नदियां, शस्य–श्यामला भूमि और बहुत ही ऋतम्भरा प्रज्ञा, रत्नगर्भा वसुन्धरा और देव-दुर्लभ मनुष्य हो-'गायन्ति देवा किल गीतकानि, धन्यास्तुते भारतभूमि भागे,' और जिसके पास तकनीक और विदेशी व्यापार का हजारों वर्ष पुराना इतिहास हो, जो अभी दो-ढाई सौ वर्षों पूर्व तक दुनिया के सबसे धनी देशों में था–'सोने की चिड़िया, कहा जाता था, वह गरीब और कर्जदार रहेगा! -?

घिनौनेपन की हद

यदि इस बात का अपमान लोगों को महसूस न हो, और अन्तर–राष्ट्रीय मुद्रा कोष का ऋण मिल गया है, इस खुशी में पाच सितारा होटल में नृत्य हो और शराब के जाम टकराये जाये तब तो देश कर्ज से मुक्त नहीं हो सकता। लेकिन यदि यह दृढ़संकल्प हो कि इस देश को कर्ज से मुक्त कराना है तो उसके लिये कठोर नियंत्रण करने पड़ेगे। जनसंख्या पर भी नियन्त्रण करना होगा। क्योंकि इतनी बड़ी जनसंख्या का जो जीवन स्तर आज है, वह औसत जीवन स्तर भी यह देश लोगों को नहीं दे पायेगा।

देश को कर्जमुक्त कराने के लिये दृढ़ संकल्प की जरूरत है। नियोजन में जो गलतियां की गई हैं, उन्हें सुधार करके, कृषि और परम्परागत उद्योगों को सुदृढ़ कर भारत की तकनीकी मुख्य धारा का अविष्कार करके, राष्ट्र के आत्मसम्मान को जगाकर अपने वैभव की ठीक–ठीक पहचान करके और सबसे बड़ी बात यह कि अपनी जनसंख्या को सीमित दायरे में रखकर यदि इस तरह के उपाय हम करें तो भारत को कर्ज से मुक्त किया जा सकता है।

९ अगस्त, १९४२ को 'भारत छोड़ो' आन्दोलन का उद्देश्य था विदेशी साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद के विरुद्ध संग्राम। उस समय देश का आर्थिक शोषण इसलिये हो रहा था क्योंकि तब देश राजनीतिक

दृष्टि से बहुत कमजोर था । उस समय यह परिकल्पना की गई थी कि देश के स्वतंत्र होने के बाद फिर से अपना तंत्र स्थापित हो गया । परन्तु आन्दोलन के ५० वर्ष और स्वाधीनता के ४५ वर्ष बाद भी देश आर्थिक आजादी की सांस नहीं ले पा रहा है । क्यों ? यह एक विचारणीय विषय है ।

विदेशी साम्राज्यवाद से मुक्ति पाने के बाद भी यदि भारतीय दृष्टि केवल परावलम्बन की बात सोचे तो यह भी विचार करना होगा कि ये राष्ट्र के घोषित उद्देश्यों के अनुकूल है?

'भारत छोड़ो' आन्दोलन का यह 'स्वर्ण जयन्ती' बर्ष है । इस अवसर पर राष्ट्र को सन्' ४२ में लिये गए संकल्प 'अंग्रेजों की गुलामी नहीं सहेंगे' की पुनरावृत्ति इस शपथ से करनी होगी कि ' भारत को कर्जमुक्त बनाएंगे, ऋणग्रस्त भारत नहीं ।'

स्वदेशी अर्थव्यवस्था

सुसंगत समाज का सिंहद्वार

डा० एम० जी० बोकारे

अध्यक्ष, स्वदेशी जागरण मंच

आज जब विश्व राजनीति और आर्थिक नीतियां संशय और अनिश्चितता के दौर से गुजर रही हैं, भारतीय अर्थव्यवस्था में विदेशी पूंजी और अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं के स्वागत में तोरणद्वार बनाए जा रहे हैं। बहुराष्ट्रीय कम्पनियां शीघ्र ही भारतीय अर्थव्यवस्था को अपनी प्रौद्योगिकी उत्पादन, विपणन और संस्कृति से ओतप्रोत कर देंगी। राजनीति भी शीघ्र ही पश्चिम के एकाधिकारवादी पूंजीवाद के आर्थिक हितों की बन्धुआ मजदूर हो जाएगी।

स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान दादाभाई नौरोजी और महादेव गोविन्द रानडे जैसे विचारकों ने आर्थिक विकास के लिए स्वदेशी का मार्ग दिखाया। उन्होंने भारत की दरिद्रता का कारण ब्रिटिश सरकार की उपनिवेशवादी नीतियों को माना। लोकमान्य तिलक ने उत्पादन, व्यापार और उपभोग के क्षेत्र में स्वदेशी आन्दोलन चलाने के लिए मुद्राकोष बनाया। महात्मा गांधी तो स्वदेशी के अग्रदूत थे ही।

यूरोप और अमरीका के प्रत्येक देश ने आर्थिक विकास के लिए स्वदेशी का मार्ग ही चुना। जर्मनी में प्रो० लिस्ट ने संरक्षणवाद की नीति का प्रतिपादन किया। अमरीका ने घरेलू स्तर पर मुक्त व्यापार और आयात

की भारी संरक्षण की नीति अपनाई। इसकी मजदूरी की बचत करने वाली प्रौद्योगिकी में स्वदेशी उद्योग और मशीनरी का ही रूप प्रकट होता है। स्पष्टतः यूरोप और अमरीका में प्रौद्योगिकी का स्वरूप उपलब्ध जनशक्ति और प्राकृतिक संसाधनों के अनुरूप था।

बास्तव में उपयुक्त प्रौद्योगिकी की संकल्पना स्वदेशी की ही संकल्पना है। प्रत्येक देश प्रौद्योगिकी-उत्पादन, उपभोग विपणन का इच्छानुसार रास्ता चुनने के लिए स्वतंत्र है। कोई देश प्रौद्योगिकी, उत्पादन और विपणन प्रणाली को जबर्दस्ती किसी पर थोप नहीं सकता। यह स्वदेशी दर्शन का मूल तत्व है। यह सार्वभौमिक सिद्धान्त है। अतः स्वदेशी आन्दोलन और आर्थिक स्वतंत्रता का युद्ध एक-दूसरे पर निर्भर है। आज सर्वोदयी, समाजवादी, गांधीवादी और राष्ट्रवादी सभी विचारों के लोग इस खतरे को महसूस कर रहे हैं और आर्थिक साम्राज्यवाद के खिलाफ एकजुट हो रहे हैं। गांधीजी ने औद्योगीकरण के इस खतरे को पहचाना था और कहा था कि औद्योगीकरण का भविष्य अंधकारमय है और यदि पश्चिम के लिये यह अंधकारमय है तो भारत के लिये तो यह और भी अंधकारमय होगा। दरिद्रता तो जानी चाहिये परन्तु औद्योगीकरण उसका इलाज नहीं है।

स्वदेशी विचार क्रमिक विकास की स्थिति में है। यदि यह विचार उपयुक्त है तो यह व्यवहार का अंग बनना चाहिये। यह विचार व्यक्ति को उसकी जीवन शैली के स्तर से सामंजस्य बैठाता है। इसकी कोई भौगोलिक सीमा नहीं हैं। प्रत्येक देश को घरेलू संसाधनों, जीवन मूल्यों, उपलब्ध जनशक्ति, उसकी संस्कृति और इतिहास के अनुरूप स्वदेशी विचार की खोज करनी चाहिये।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का साम्राज्य

दूसरे विश्व युद्ध के पूर्व अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में एक तरफ साम्राज्यवादी शक्तियां थीं, दूसरी तरफ इनके उपनिवेश थे। युद्धोत्तर काल में साम्राज्यवादी देशों द्वारा नियंत्रित संस्थाएं हैं जिनके द्वारा विश्व की अर्थ-व्यवस्था का नियमन किया जा रहा था। बहुत से देश राजनीतिक दृष्टि से

स्वतंत्र हुए परन्तु वे अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थानों पर निर्भर बने रहे। पहले विजित देश विजेता देश के रूप में व्यापार की नीतियों का निधरिण करता था। अब अर्थव्यवस्था अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं का अनुसरण करने लगी है।

जे०एम० केन्स अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं का विश्वव्यापी जाल बुनने वाला विचारक था। भारत जैसे देशों के नग्न शोषण के बजाय शोषण के शालीन, धूर्त और राजनयिक तरीके निकाले गये। धन के प्रवाह पर राजनीतिक शर्तों के बांध बनाये गये।

भारतीय रुपये की क्रय–शक्ति के दो आयाम हैं। इनकी बाह्य क्रय–शक्ति का पता डालर, स्टर्लिंग, रूबल आदि की तुलना में इसकी विनिमय दर से चलता है। इसकी आंतरिक शक्ति वस्तु और सेवाओं के मूल्यों में प्रतिबिंबित होती है। इसी संदर्भ में स्वदेशी दृष्टिकोण को परिभाषित करना होगा। रुपये की आंतरिक स्थिरता का नियमन विनिमय दर नहीं करेगी। रुपये की क्रय-शक्ति में वृद्धि ही उचित व उपयुक्त नीति होगी। यदि घरेलू अर्थव्यवस्था में क्रय शक्ति बढ़ी तो अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में स्वाभाविक रूप से मजबूती मिलेगी और रुपये की विनिमय दर हमारे पक्ष में आयेगी। हम विनिमय दर में सुधार और स्थिरता लाकर अपनी घरेलू अर्थव्यवस्था को विनिमय दर पर निर्भर बना रहे हैं। इस तरह हम स्वयं को पश्चिमी समाजवादी अर्थव्यवस्था के कुचक्रों पर ही सदा के लिए निर्भर बना लेंगे। यही सिद्धान्त डा० बाबासाहेब अम्बेडकर ने अपने शोध 'रुपये की समस्या' में प्रस्तुत किया है। यह सिद्धान्त आज भी प्रासंगिक है। किसको स्थिर करना चाहिये, विनिमय दर को या आन्तरिक क्रय–शक्ति को ? इस प्रश्न का डा० अम्बेडकर विश्लेषण करते हैं और समाधान देते हैं कि रुपये की घरेलू क्रय–शक्ति को स्थिरता दी जानी चाहिये। विदेशी सदा विनिमय दर सम्बन्धी नीति थोपने की कोशिश करेंगे।

विश्व मुद्राकोष ने सभी विकासशील देशों की अर्थव्यवस्था को अपना गुलाम बनाया है। वह विनिमय दरों को नियंत्रित करता है और

घरेलू मूल्य स्तर को मुद्रा स्फीति की दिशा में बार-बार बदलाव की ओर प्रवृत्त करता है। डा० अम्बेडकर के अनुसार स्वदेशी नीति इसके ठीक विपरीत होगी। यह विचार-विमर्श अभी प्रारम्भिक दौर में है और इस दृष्टि से विशेषज्ञों के सुझाव आमंत्रित हैं।

स्वदेशी का सिद्धान्त समानता है। विश्व में सभी देश एक से हैं। देशों के अहंकार से असमानता उत्पन्न होती है जिसके परिणामस्वरूप शर्तें लगाई जाती हैं। विशेषाधिकार समाज को विभाजित करते है। राज्य विशेषाधिकारों के लिए कानून बनाते हैं। सिद्धान्त रूप से प्रतियोगी प्रक्रिया आर्थिक प्रणाली का विषणन करती है परन्तु विधायी प्रावधानों द्वारा बहुत से विशेषाधिकार प्राप्त कर लिये जाते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में अर्थव्यवस्था के संकट का यह आंतरिक कारण है। द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् यह सहमति हुई थी कि युद्धोत्तर नीति प्रतियोगितानुसार व्यापार के अनुरूप होगी, परन्तु ५० वर्षों में ऐसा देखने में नहीं आया।

स्वदेशी, आर्थिक विकास के सम्बन्ध में हमारी क्षमताओं का पूर्ण दोहन है। यह कोई नकारात्मक दृष्टिकोण नहीं है। हमें पश्चिमी औद्योगिक सभ्यता को अस्वीकार करना है और साथ ही विचार के क्षेत्र में पूरे विश्व में मान्य स्वदेशी आर्थिक सिद्धान्तों की खोज करनी है।

वेदों में कहा गया है कि हमें सभी दिशाओं से ज्ञान प्राप्त हो। पश्चिमी यूरोप में अमरीका के देशों में पिछले कुछ वर्षों में प्राप्त ज्ञान का बहुमूल्य भण्डार बना है। स्वदेशी सिद्धान्त उसका आदर करता है और अपने देश में उसे उपयुक्त रूप से प्रयुक्त करने का समर्थन करता है।

डा० अम्बेडकर का सिद्धान्त

निर्यात में वृद्धि और आयात में गिरावट क्यों होती है? यह एक आधारभूत प्रश्न है भुगतान असंतुलन को हम दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि देश एक ऐसा बाजार बन गया है जो विक्रय करने की दृष्टि से तो

अच्छा है परन्तु उससे क्रय नहीं किया जा सकता। यह स्थिति तब उत्पन्न होती है जब उस देश का मूल्य स्तर से अधिक होता है। अत: यदि प्रतिकूल संतुलन का कारण विनिमय दर में गिरावट है और यदि व्यापार संतुलन प्रतिकूल होने के कारण घरेलू मूल्यों से अधिक होता है, तो निष्कर्ष यह निकलता है कि विनिमय दर में गिरावट और कुछ नहीं, अपितु मुद्रा क्रय शक्ति में ह्रास का ही दूसरा नाम है, यानी मूल्य वृद्धि ही है। व्यापार संतुलन उसकी एक व्याख्या है, अन्तिम व्याख्या नहीं। जितना मर्जी खर्च कर लिया जाए, परन्तु अन्तिम निष्कर्ष यही निकलता है कि रुपये की विनिमय दर में गिरावट रुपये की क्रय-शक्ति में गिरावट का ही परिणाम है।

डा० अम्बेडकर के इस सिद्धान्त के प्रकाश में हम भारत में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का मूल्यांकन करें। क्या ये कम्पनियाँ हमारे मूल्य स्तर को उस स्तर तक लाने देंगी जहाँ वह उनके अपने देशों से कम होगा? यह तो उनके लिए आत्मघाती होगा। अत: भारत में मूल्यों के क्षेत्र में वे कुचक्र चलाते रहेंगे।

हमें 'तर्कसंगत' मूल्य प्रणाली के वैज्ञानिक मानदण्ड ढूंढ़ने होंगे। डा० अम्बेडकर ने उद्योग में मन्दी और लाभ में मंदी में अन्तर किया। उन्होंने अपने शोध से सम्बन्धित एक प्रश्न के उत्तर में कहा था, 'गरीब वर्गों और राष्ट्रीय दृष्टिकोण से मूल्यों में कमी, मूल्यों में बढ़ोत्तरी की अपेक्षा बेहतर है। उन्होंने यह जानते हुए भी कि परिवर्तन की प्रक्रिया में विभिन्न वर्गों को लाभ हानि उठानी पड़ेगी, मूल्यों में कमी का समर्थन किया।'

स्वदेशी अर्थव्यवस्था में विभिन्न आर्थिक समस्याओं का सम्यक् निदान होगा। ये समस्याएं हैं–बेरोजगारी, मूल्य वृद्धि, बढ़ते कर आदि। स्वदेशी अर्थव्यवस्था में उत्पादन, उपभोग, करों, रोजगार और मूल्यों का नियमन प्रतियोगी बाजार अर्थव्यवस्था द्वारा किया जायेगा। इस प्रतियोगी बाजार अर्थव्यवस्था का जरा खुलासा करना होगा। यह एकाधिकारवादी बाजार

व्यवस्था भी हो सकती है और प्रतियोगी बाजार अर्थव्यवस्था भी हो सकती है।

मानक पाठ्यपुस्तकों में स्पष्ट रूप से वर्णित है कि पेटेंट, कापीराइट, ट्रेड मार्क आदि एकाधिकार के ही दूसरे रूप हैं।

डा० पी० आर० ब्रह्मानन्द के अनुसार धर्म और अर्थशास्त्र का सम्बन्ध बनाना होगा, तभी स्वैच्छिक ग्रामीण विकास के सम्बन्ध में समग्र दृष्टिकोण विकसित किया जा सकेगा। यह शुद्ध अर्थशास्त्र में मूल्य व्यवस्था को नियंत्रण देना है। इससे धर्म शास्त्र का निर्माण होगा। उससे अंततो-गत्वा मानव शक्ति संसाधनों के चक्रीय प्रवाह के कारण बेहतर और अर्थ समाज का जीवनदायक है। डा० ब्रह्मानन्द जैसे अर्थशास्त्री इसी कारण संसाधनों और उसके उपयोग के सम्बन्ध में धर्म के उपयोग की चर्चा करते हैं। कैनेथ बाऊडिंग ने भी बिना जीवन मूल्यों वाली और जीवन मूल्यों वाली मांग संरचना में भेद किया है।

सरकार को अपनी विज्ञापन नीति पर तत्काल ध्यान देना चाहिए। अन्यथा बहुराष्ट्रीय कंपनियां मांग प्रबन्ध के सिद्धान्त के तहत विज्ञापन माध्यमों पर कब्जा कर लेंगी। इससे सुरक्षा का एक मात्र उपाय धर्म है। अर्थशास्त्री के इस युद्ध में धर्म की अहम् भूमिका है। विशेष रूप से उत्पादन और उपभोग ढांचे में। यह अर्थशास्त्र का स्वदेशी सौरभ है।

बेरोजगारी का दबाव

शास्त्रीय अर्थशास्त्र में उत्पादक और अनुत्पादक मजदूरों का उल्लेख किया गया है। यह अन्तर रोजगार के स्वदेशी सिद्धान्त के लिए महत्व-पूर्ण है। तेजी की अवस्था में आधुनिक प्रौद्योगिकी मजदूरों को बेरोजगार कर देती है। वहीं मन्दी की स्थिति में उन्हें निकाल दिया जाता है। अतः पूंजीवादी प्रणाली में उनका रोजगार हमेशा खतरे में रहता है। वे क्या करें! शास्त्रीय अर्थशास्त्री के पास मजदूरों की दो श्रेणियां हैं। मजदूरी पाने वाले और न पाने वाले। केन्स व उसके अनुयायीअर्थशास्त्रियों

के लिए पूर्ण रोजगार का अर्थ वेतनभोगी व मजदूरी पाने वाले भाग से है। इस सीमा को दूर करना होगा। सरकारी नीति में स्वरोजगार प्रदान करने का अधिकतम प्रयास किया जाए। जब भी मजदूर बेरोजगार हो, उन्हें स्वरोजगार उद्यमों में समाहित किया जाए। संविधान में काम के अधिकार पर ध्यान दिया जाए। मजदूरों को उनके परिश्रम का प्रतिदान मिले और उनका शोषण न हो। प्रबन्ध को भी प्रबंधकीय श्रम का पूरा भुगतान हो।

असफल पश्चिमी अर्थशास्त्री

पश्चिमी अर्थशास्त्री मूल्यों की समस्या का भी कोई समाधान प्रस्तुत नहीं कर पाए। अवस्फीति होने पर सरकार मूल्य बढ़ाने का प्रयास करती है और बढ़ने पर उन्हें रोकती है। अर्थशास्त्रियों के अनुसार मूल्यों का घटना आर्थिक विकास के लिए शुभ नहीं माना जाता है।

भारत का अनुभव देखें। सत्तर के दशक में चीनी की आवाजाही स्वतंत्र होते ही सरकार ने मूल्य स्तर बनाए रखने के लिए लेवी प्रणाली अपनाई। इस समय ऑटोमोबाइल, दुपहिया वाहन, टेलीविजन, रेफ्रीजरेटर, पंखे आदि के क्षेत्र में किस्त और किराया क्रय पद्धति से मूल्य स्तर बनाए रखने की कोशिश की जा रही है।

कृषि वस्तुओं का मूल्य, समर्थन द्वारा बढ़ाया जाता है। औद्योगिक वस्तुओं के मूल्य स्तर को किस्त पद्धति और किराया क्रय पद्धति द्वारा बनाए रखा जाता है। यदि सरकार कृषि और औद्योगिक क्षेत्र की महत्वपूर्ण वस्तुओं की कीमतें नियमित रूप से प्रकाशित करती रहे तो उपरोक्त की मात्रा दिखाई देगी। इस स्थिति में मूल्य कैसे कम हो सकते हैं ?

अन्तर्विरोधी हित समूह

राज्य बनाम नागरिक यह एक खतरनाक स्थिति है। यदि हमारे देश के व्यापारी और उद्योगपति संघर्ष में हमारे साथ नहीं हैं तो हम वित्तीय संस्थाओं के अन्तर्राष्ट्रीय षड्यंत्रों का सामना नहीं कर सकते।

हमें किसानों, मजदूरों, उद्योगपतियों आदि के समूह में वास्तविक

सामंजस्य स्थापित करना होगा। सभी लोगों की आशंकाएँ समाप्त करनी होंगी, तभी बहुराष्ट्रीय कंपनियों का सामना किया जा सकेगा।

हमारा लक्ष्य सुनिश्चित है हमें विदेशी व्यापार को अनुकूल भुगतान संतुलन में बदलना है और रुपए की अनुकूल विनिमय दर हासिल करनी है। वस्तुओं के दाम न बढ़ें अतः इसके लिए आत्मानुशासन आवश्यक है। इसके कुछ बिन्दु निम्नलिखित हैं:–

- किसी को भी 'काल्पनिक कमी' सृजित करने की स्वतंत्रता न हो।
- उपभोक्ता उत्पादन लागत जिसमें उचित लाभ सम्मिलित है, से कम मूल्य की अपेक्षा न करें।
- उचित लाभ से तात्पर्य ब्याज दरों से अधिक लाभ से हैं।
- उत्पादक में लाभ मजदूरों, उपभोक्ताओं और निवेशक तीनों को मिले।

विश्व मुद्रा बाजार में हमारे प्रतिकूल विनिमय दर को अनुकूलता में परिवर्तित करने में ही हमारी आर्थिक सुरक्षा है। इसके लिए घरेलू बाजार में बाजार मूल्य को लगातार कम करना होगा। दूसरे शब्दों में 'उत्पादन लागत को निरन्तर कम करना होगा। यदि हम ऐसा करने में सफल हुए तो हमारा निर्यात बढ़ेगा और व्यापार संतुलन भी अनुकूल होगा।'

इसके लिए भारतीय अर्थव्यवस्था को अनुशासित करना होगा। भारत के सभी राज्य–प्रदेशों में लागत व मूल्य निदेशालय स्थापित करें। निदेशालय विभिन्न वस्तुओं से सम्बन्धित आंकड़े इकट्ठे करें और राज्य में मूल्य से उसकी तुलना करें। केन्द्र में इसी प्रकार का विभाग बनें। इस तरह के आंकड़े वर्ष में एक बार प्रकाशित किये जाएं, जिससे बाजार मूल्य की कृषि और औद्योगिक क्षेत्र की लागत से तुलना की जा सके। इससे बजट में व्यय भी घटेगा। लागत लेखांकन को अनिवार्य बना देना चाहिये व इसे मजदूरों के समक्ष प्रस्तुत किया जाए जिससे वे उत्पादक मूल्य और लाभ से परिचित हो सकें।

अन्य तत्त्व

आर्थिक क्षेत्रों में उठाए इन कदमों को सामाजिक, राजनीतिक और

सांस्कृतिक क्षेत्र में समर्थन देना होगा। राजनीतिक लोकतंत्र अब अत्यधिक हो गया है। हमें स्वस्थ लोकतांत्रिक मूल्यों को प्रोत्साहन देना होगा। प्रशासनिक ढ़ाँचा दायित्वों और जनता के प्रति जवाबदेही से दूर होता जा रहा है।

पिछले कुछ वर्षों में शिक्षा प्रणाली चरमरा गई है। इसे नये परिप्रेक्ष्य में देखना होगा। प्रतिनिधि संस्थाएं अब राष्ट्रीय धारा की मुख्य प्रतिनिधि नहीं रही हैं। विद्यार्थियों को साथ जोड़ना होगा। न्याय व्यवस्था को सामंजस्यपूर्ण बनाना होगा। हमारी सामाजिक व्यवस्था में देश की एकता और अखण्डता का प्रमुख स्थान है। सहिष्णुता, अहिंसा, सर्वधर्म-समभाव आदि विचार हमारी संस्कृति का अंग बनें।

स्वदेशी भारतीय जीवन में विकास का नया चरण है। इससे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में परिवर्तन आयेगा। जोन राबिन्स ने 'अर्थशास्त्र का दर्शन' पुस्तक लिखी है। इसमें आर्थिक सिद्धान्तों की बनी-बनाई धारणाओं से हटकर विचार धारा भी है। स्वदेशी अर्थव्यवस्था भी आर्थिक सिद्धान्तों के दर्शन के क्षेत्र में एक खोज है। स्वदेशी विश्व के व्यक्तियों के आर्थिक सिद्धान्तों के दर्शन के क्षेत्र में एक खोज है। स्वदेशी विश्व के व्यक्तियों के आर्थिक व्यवहार को परिवर्तित करने की क्षमता रखती है।

पाल स्वीजी ने अपनी पुस्तक 'एकाधिकारवादी पूंजीवाद' में इस सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण बात कही। उनका निष्कर्ष था कि अविवेकी समाज एकाधिकारवादी पूंजीवाद का परिणाम है। उन्होंने यूरोप और अमरीका के अविवेकी समाज के लक्षण गिनाए। उन्होंने यह भी कहा कि एकाधिकारी मूल्यों के सम्बन्ध में सामान्य सिद्धान्त खोजे नहीं जा सके हैं। एकाधिकारवादी मूल्य सिद्धान्त शीघ्र ही विशेष मामलों में परिवर्तित हो जाते हैं। स्वदेशी अर्थव्यवस्था इसके पूर्णतया विपरीत है। अतः यह एक तर्कपूर्ण और सुसंगत समाज की परिकल्पना करता है।

स्वदेशी अभियान

स्वाधीनता की उमंग

बिन्दुमाधव जोशी

अध्यक्ष, अखिल भारतीय ग्राहक पंचायत

संसार भर में देशों के आपसी व्यापार की लम्बी और प्राचीन परंपरा है। भारत और ग्रीस में पुराने जमाने में प्रचलित व्यापारिक सम्बन्धों के कई प्रमाण उपलब्ध हैं। इन सम्बन्धों की छानबीन करने पर पता चलता है कि सारे व्यापारिक सम्बन्ध व्यक्ति स्तर पर थे, कभी-कभार व्यापारियों के समूह देश-देश की यात्रा किया करते थे परन्तु इन सम्बन्धों में कहीं किसी प्रकार के विवाद का नामोनिशान नहीं था।

परन्तु सबसे पहले ईस्ट इंडिया कम्पनी ने व्यापारिक विचारों की शुरुआत की। सन् १६०० में व्यापार के निमित्त ईस्ट इंडिया कम्पनी ने भारत की भूमि पर कदम रखा। इसी समय छुटपुट डच कंपनियां भी भारत में पहुंची थीं। सन् १६१२ में ईस्ट इंडिया कम्पनी ने डच कम्पनियों से कुछ व्यावसायिक अधिकार खरीद लिए थे, परन्तु सन् १६२३ में सूरत बन्दरगाह पर अपने व्यापार को प्रस्थापित करने के लिए डच कम्पनी के साथ लड़ाई की। शस्त्रबल के आधार पर व्यापारिक अधिसत्ता कायम करने की दिशा में यह पहला चरण था।

इसके बावजूद यूरोप के देशों ने देशखोर बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का

सिर झुकाकर स्वागत नहीं किया बल्कि इन्होंने स्वदेशी कम्पनियों को सुरक्षा प्रदान करने के साथ बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का तगड़ा विरोध करने की नीति अपनाई। इस प्रकार अपने-अपने देश में स्वदेशी की भावना को जगाये रखा।

यूरोप के देशों द्वारा स्वदेश नीति अर्थात् स्वदेशी भावना अपनाये जाने के परिणाम स्वरूप जब बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का नुकसान होने लगा और दिवाला पिट जाने की आशंका हुई और यूरोप के देशों में प्रवेश कर पाना मुश्किल हो गया, तब सारी कम्पनियों ने मिलकर आपसी आर्थिक हित सम्बन्धों की रक्षा करने के लिमे 'कार्टेल' प्रणाली अर्थात् गुटबाजी को चलाया। इस प्रकार १९१४ से लेकर द्वितीय महासमर तक की अवधि में 'कार्टेल', प्रणाली के सहारे बहुराष्ट्रीय कंम्पनियों ने अनेक देशों के बाजारों को अपने काबू में कर लिया था। 'कार्टेल प्रणाली को अपनाने वाली कम्पनियों में जनरल मोटर्स ड्यूपो, रेमिंग्टन, फायर स्टोन, आई० सी० आई०, कोका-कोला, कोस्ट आदि कम्पनियां प्रमुख हैं।

बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने केवल इतना ही नहीं किया वरन द्वितीय महायुद्धोत्तर काल में १ जनवरी, १९४८ को बड़े अमीर देशों ने सम्मिलित आर्थिक आक्रमण हेतु 'गैट' नाम से एक संघटन बनाया। इस संघटन के १०४ अमीर देश सदस्य थे। यद्यपि यह एक संघटन था तथापि अमरीका ने शुरू से यह ध्यान रखा था कि संघटन उसकी प्रभुता में काम करे और १९९२ में हालत यह है कि 'गैट' पूर्णरूपेण अमरीका के आधीन संघटन है। साथ ही विश्व बैंक और मुद्रा कोश जैसे संस्थानों की बागडोर भी आज अमरीकी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के हाथ में हैं।

अमरीकी कम्पनियों का मुकाबला करने के लिए यूरोप के देश भी संगठित हुए हैं। इन कम्पनियों के संगठन ने अमरीका की आर्थिक साम्राज्य की परिकल्पना को धूमिल करने के लिए अपनी कम्पनियों का व्यापार सभी देशों में फैलाना शुरू किया है। जापान ने १९७० से इसमें

महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है । आज १९९२ में जापान भी संसार की महान अधिसत्ता का स्वामी है ।

संसार भर में २४ हजार से अधिक बहुराष्ट्रीय कम्पनियां कार्यरत हैं, जिन्होंने संसार की अर्थप्रणाली पर काबू कर रखा है। इन कम्पनियों में कार्यरत कर्मचारियों की संख्या करोड़ों में है। इन महाकाय कम्पनियों की अपरिमित शक्ति की कल्पना तक करना हमारे लिये असम्भव है। पैसा और मनुष्य की शक्ति इन कम्पनियों के पास इतनी प्रचण्ड है कि किसी भी एक देश की प्रभुसत्ता से वह कहीं अधिक है । इस आर्थिक सत्ता में तीन बड़े गुट हैं । यूरोप में स्थित अमीर देश 'उत्तर' नाम से सम्बोधित किये जाते हैं। इन में आपस में दो गुट हैं, पहला है अतिशक्तिमान अमरीका का गुट, दूसरा गुट उन यूरोपीय देशों का है जिनकी आर्थिक शक्ति मध्यम है । तीसरा गुट शेष अविकसित देशों का है, इसे 'दक्षिण गुट' कहा जाता है । इसी प्रकार तीन आर्थिक जगत बने हैं । पहला जगत–'पहले उत्तर गुट' का –दूसरा –'दूसरे उत्तर गुट' का और तीसरा 'दक्षिण गुट' का ।

संसार के आर्थिक साम्राज्यवादी चाहते हैं कि तीसरे जगत से प्राकृतिक संपत्ति और मानव संपत्ति लगातार मिलती रहे । किसी साहूकार की भांति ये देश भी गरीब देशों को ऋण देकर ऐसी–ऐसी शर्तें लाद देते हैं कि धीरे–धीरे कंगाल बनकर सारे गरीब देश तहस–नहस हो जाए । साहूकार–किसान सम्बन्धों और उत्तर गुट–दक्षिण गुट सम्बन्धों में कोई अन्तर नहीं है ।

भारत के गले में फंदा

अमरीका ने आज मुद्राकोश और विश्व बैंक को साधन बनाकर बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के जरिये भारत के गले में फंदा डाल ही दिया है । वाशिंगटन से कर्जदार भारत के नाम यह फर्मान जारी किया गया है कि भारत सरकार इस प्रकार से उद्योग विषयक कानून में परिवर्तन करे ताकि अमरीकी बैंकों और बीमा कम्पनियों का जाल आसानी से बिछाया जा सके,

तथा मुक्त व्यापार पर भी किसी तरीके की पाबंदी न हो। वाशिंग्टन के इस हुक्मनामे में वे सारी शर्तें हैं जो भारत की आर्थिक स्वाधीनता और प्रभुसत्ता से सम्बन्धित हैं। मुद्राकोश की उक्त शर्तों को कबूल करने का मतलब कई भारतीय उद्योग व्यापार विषयक मुद्दों को संसद के अधिकार क्षेत्र से बाहर कर देने से है। इन क्षेत्रों में और अन्य मामलों-विषयों में दखल देते हुए बहुराष्ट्रीय कम्पनियां भारत में राजनीतिक उथल-पुथल मचा सकती हैं।

भारत में बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा किये जा रहे पूंजी निवेश की मात्रा दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही है। पूंजी निवेश का परिणाम बहु-राष्ट्रीय कंपनियों की समृद्धि तथा भारत की कंगाली है। समूचे संसार की संपत्ति से कहीं अधिक संपति जिन सौ कंपनियों के पास है उनमें से ५२ कंपनियां भारत में मजबूती से पैर जमाए उद्योगों में लगी हुई हैं। इनमें से हर कंपनी के विश्वभर में फैले हुए कारोबार का वार्षिक बजट भारत के वार्षिक बजट की अपेक्षा कई गुना अधिक है। इस प्रकार आर्थिक दृष्टि से इन कंपनियों की तुलना में भारत की शक्ति बहुत ही क्षीण हो जाती है।

बहुराष्ट्रीय कम्पनियां अब बन्दूक और बारूद के सहारे अपना शासन करना नहीं चाहतीं, उनका प्रयास अब अरबों रुपयों और कोटि-कोटि मानवश्रम के बल पर अपनी सार्वभौमिकता और प्रभुसत्ता स्थापित करने का है। वैसे मुझे भान है कि मेरा उक्त कथन अर्द्धसत्य है क्योंकि बन्दूक और बारूद ही नहीं अपितु इनसे भी खौफनाक प्रक्षेपास्त्रों का निर्माण कर ये कंपनियां हिंसा की काली छाया में धरती पर बसने वाले मनुष्यों के जीवन के हर क्षण को वस्तु से बांधकर जड़वत कर देंगी और प्रकारांतर मानवता को समाप्त कर देंगी।

परन्तु इन संभावनाओं का विकल्प भी है और वह है स्वदेशी की भावना। स्वदेशी केवल शब्द नहीं है बल्कि 'स्वदेशी' एक विचार है, एक 'जीवन दर्शन' है और यह भावना की सुनहली झिलमिलाती झालर भी है।

इसमें स्वावलम्बन की जिद है, गुलामी से घृणा है और स्वाधीनता है ललकती उमंग भी है। इसलिए आवश्यक है कि हम अपने विचार को, विचार प्रणाली को स्वदेशी के संदर्भ में आंक लें, इससे अपना आवश्यक भी स्वदेशी होगा। स्वावलम्बन का जन्म स्वदेशी विचार से होता है।

स्वाधीनता का मूलाधार

आज़ादी से पहले समाज के नेताओं ने जब-जब देश की स्वाधीनता का और देश के भविष्य का विचार किया तब-तब असली स्वदेशी विचार दर्शन का प्रतिपादन बार-बार किया गया। स्वामी विवेकानन्द, लोकमान्य तिलक, योगी अरविन्द, महात्मा गांधी, स्वातंत्र्य वीर सावरकर, महात्मा ज्योतिराव फुले, डा० हेडगेवार, डा० बाबासाहब अम्बेडकर और डा० राजेन्द्र प्रसाद आपसी मतभिन्नता के बावजूद प्राचीन भारतीय दार्शनिक मान्यताओं के बारे में एक मुख से बोलते थे। भारतीय मान्यताओं के सम्बन्ध में उनमें मतभिन्नता नहीं थी।

महात्मा गांधी ने प्रकटतः यह सवाल किया था कि क्या भारतीयों के पास उनकी अपनी वैचारिक मान्यताओं के पूर्व की परम्परा नहीं है? हमें चाहिये कि पश्चिम से आयातित भाषा और मोहक फलकों के प्रभाव में हम न फंसें। गांधीजी ने साफ-साफ कहा था कि, 'भारतीयों की दरिद्रता के सम्बन्ध में जो बात पाश्चात्य समाजवाद और साम्यवाद में कही जाती है उसे अंतिम सत्य मानना हमारी भूल होगी।' इस संदर्भ में महात्माजी के विचारों को मूल ग्रन्थों, लेखों में देखा-पढ़ा जाना चाहिये। इस सिलसिले में बहुत ही साफगोई के साथ और स्फटिक स्वच्छ शब्दों में गांधीजी ने अपनी बात कही है। स्वातंत्र्य और स्वराज के सम्बन्ध में गांधीजी की कही बातों का सूत्र कुछ यों है, 'हमें स्वराज इसलिए चाहिए कि हम अपनी संस्कृति के मूल रूप और मान्यताओं को बरकरार रख सकें। हमें कई नवीन विचारों का लेखन अवश्य करना है परन्तु भारतीय पट्टी पर लिखना है।' डा० राधाकृष्णन ने हिन्दू जीवन दर्शन की सर्वश्रेष्ठता को

'हिन्दू इज अ वे आफ लाइफ' कहकर हिन्दू जीवन प्रणाली का समर्थन प्रभावशाली ढंग से किया।

वैचारिक परावलंबन का परिणाम

आज यह ढांचा चरमरा रहा है, दुःख, दैन्य, दारिद्र्य, अभाव, अन्याय, मूल्यहीन राजनीति और भ्रष्टाचार ने भारतीय स्वाधीनता को खोखला और शक्तिहीन बना दिया है।

स्वाधीनता के चार दशक बीत जाने पर भी आज तक भारत सुखी, समृद्ध, सम्पन्न और आत्मनिर्भर देश के नाते अपनी साख क्यों नहीं जमा पाया? भारत की एकात्मता आखिर विघटन की ओर मुखातिब क्यों है? सभी प्रश्नों पर विचार करने से एक ही उत्तर मिलता है कि हमारे प्रशासक जिस विचार प्रणाली का विगत चार दशक से प्रतिपादन करते आए हैं वह 'स्वदेशी' नहीं है।

भारत के दार्शनिकों ने जिस हिन्दू जीवन-दर्शन के स्वदेशी विचार का प्रतिपादन किया उसे नेहरुवादी नेताओं ने संकीर्ण जातिवादी, प्रतिगामी प्रस्थापितवादी कहकर ४३ वर्षों तक तिरस्कृत किया। स्वदेशी विचार का अब तक उपहास ही किया गया है। विज्ञाननिष्ठ और मानवतावादी विचार देने वाले जीवन-दर्शन को हेय मानकर बदनाम किया गया है। आज १९९२ में हालत यह है कि नेहरू के अनुयायियों ने पाश्चात्य देशों से आयातित जिन साम्यवादी और समाजवादी विचारों की आरती उतारी थी, वे विचार, जहां उपजे थे वहीं पर उन्हीं के अनुयायियों द्वारा दफना दिए गये हैं। इनके भारतीय अनुयायी अब दिग्भ्रमित हैं कि क्या करें और किससे दिशा निर्देश पाएं?

'स्वदेशी' दर्शन की परंपरा

हिन्दुस्थान के राजनीति शास्त्र की अपनी भव्योदात्त और लम्बी परंपरा है। यहां उन शासकों की दीर्घ श्रृंखला थी जिन्होंने न केवल राजनीति शास्त्र के सिद्धान्तों को गढ़ा बल्कि उन पर सही-सही अमल भी किया था। इसी राजनीति शास्त्र पर चलते हुए इन्होंने भारत में

समय-समय पर स्वर्ण युगों का निर्माण भी किया था। हिन्दू दार्शनिकों द्वारा प्रतिपादित शाश्वत मूल्यों के आधार पर और अर्थनीति की बुनियाद पर स्थित यहां के प्रशासनों को इतिहास में 'आदर्श राज्य' के रूप में दर्ज किया गया है। श्रीराम का 'राम राज्य,' युधिष्ठिर का धर्मराज्य, चन्द्र-गुप्त मौर्य का आर्य राज्य, समुद्रगुप्त का स्वर्णयुग और छत्रपति शिवाजी के राज्य विश्व भर में आदर्श राज्यों के मानदण्ड माने जाते रहे हैं।

राजनीति और अर्थनीति पर मानक ग्रंथों की रचना करने वाले चिन्तकों और विचारकों की उज्ज्वल हिन्दू परम्परा बड़ी दीर्घ परम्परा है। मनु ने, जो एक क्षत्रिय राजा थे, लगभग ३८०० वर्ष पूर्व राजनीति शास्त्र पर पहले मौलिक ग्रंथ की रचना की थी। इसके बाद १५०० वर्ष की अवधि में राजनीति और अर्थनीति पर जिन १६ चिन्तकों के ग्रन्थ प्रका-शित हुए उनके नाम निम्नानुसार हैं :

१-मनु, २- बृहस्पति। ३- शुक्राचार्य, ४- भारद्वाज, ५- विशालाक्ष, ६- पराशर, ७- पिशुण, ८- कौनापदत ९- वात्याधि, १०- बहु-दंती पुत्र, ११ कात्यायन, १२- कणिक, १३- कात्यान, १४- छोटा मुख, १५- किजालक, १६- पिशुणपुत्र, १७- अंभियास, १८ - कौटिल्य गुरु १९- आर्य चाणक्य। इस सूची के अंतिम ग्रंथकार आर्य चाणक्य ने अपने 'अर्थशास्त्र' ग्रन्थ की रचना २३०० वर्ष पूर्व की थी।

राजनीति शास्त्र और अर्थनीति शास्त्र पर यद्यपि १६ चिंतकों ने अपनी रचनाएं लिखी थीं। परन्तु आज ख्यातनाम सिर्फ आर्य चाणक्य हैं। स्वयं चाणक्य ने अपने पूर्ववर्ती १८ विद्वानों का हवाला देते हुए लिखा है कि पूर्व सूरियों के विवेचन का अनुगमन करते हुए उन्हीं के विचारों को व्यावहारिक और दृढ़ आधार प्रदान करने के उद्देश्य से प्रस्तुत 'अर्थशास्त्र' की रचना की गई है।

हमें चाहिए था कि हम अपने प्राचीन स्वदेशी राजनीति शास्त्र

और अर्थशास्त्र के ज्ञान भण्डार का अवलोकन करते हुए हिन्दुस्थान की राजनीतिक और आर्थिक वैचारिक पृष्ठभूमि पर हिन्दुस्थान के पुनर्निर्माण हेतु संविधान तैयार करते अभिप्राय है कि अपने संविधान में हिन्दू राजनीति शास्त्र और हिन्दू अर्थशास्त्र के शाश्वत मूल्यों को संविधान के आधारभूत और निर्देशक तत्वों के रूप में हम स्वीकार करते । यह ध्यान देने योग्य तथ्य है कि जहां संसार भर के देशों के संविधान अधिकारों (राइट्स) पर जोर देते हैं वहीं हिन्दू राजनीतिज्ञों ने अपने प्राचीन संवि-धानों में हमेशा कर्तव्यों पर जोर दिया है। पश्चिम के जीवन विषयक दृष्टिकोण में और हिन्दू जीवन दर्शन में मूलभूत अन्तर है।

स्वामी विवेकानन्द ने दो टूक शब्दों में अपनी बात कही है। स्वामीजी कहते हैं कि बिना आध्यात्मिक आधार के बनो उपर और बुलन्दी पर पहुंचने के लिए ललकती पाश्चात्य जड़वादी संस्कृति आने वाले ५० सालों में ही मुंह के बल गिरकर चूर-चूर हो जाएगी। ऐसी स्थिति में यूरोप को उप-निषदों द्वारा प्रतिपादित धर्म ही पार ले जा सकता है, और ध्वस्त हो जाने से बचा सकता है।

स्वामीजी के कथन की सार्थकता का अहसास हम आज १९९२ में कर रहे हैं। कम्युनिज्म दर्शन समाप्त हुआ, न नाम बचा और न निशान। कम्युनिस्ट देश खंड-खंड, विभाजित हो चुका है तो दूसरी ओर समाज-वादी राज्य सत्ताओं के किले और बुर्ज ढह गए हैं।

परिस्थिति को अब हमारी प्रतीक्षा है। जागें, स्वदेशी के महामंत्र को कंठस्थ कर स्वावलंबन के पथ पर अग्रसर होकर अपने श्रम के सहारे हम स्वयं समृद्ध बनें। चलिए तैयार हो जाइए! उठें!

चाहें नहीं कृपा किसी की यहां।
न व्यर्थ सुख फूलें न फले यहां।
अपने बलबूते पर निर्भर सशक्त।
घोषित होंगे विश्व नेता अनाभिषिक्त ॥

वंदेमातरम्, स्वदेशी की जय।

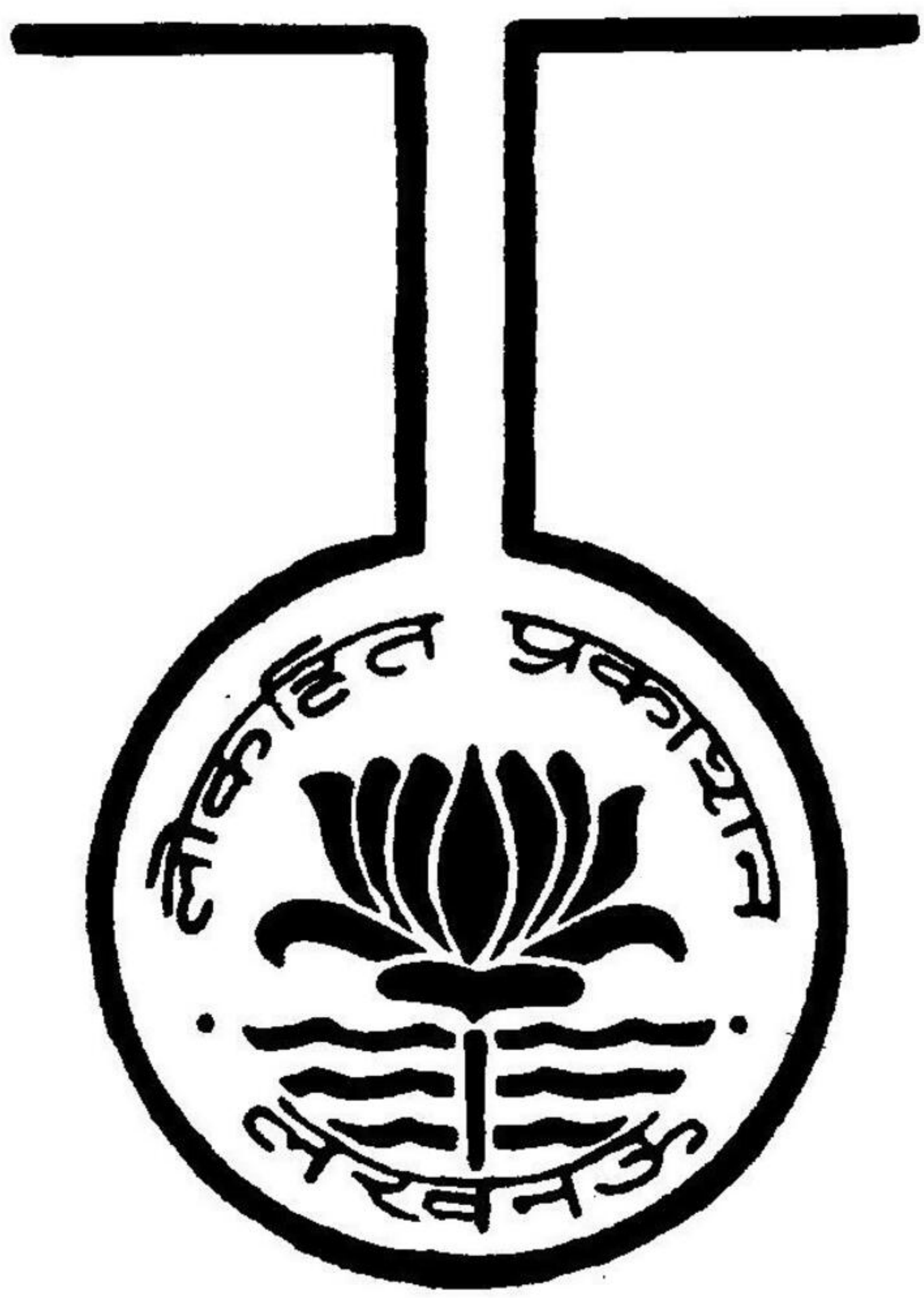

लोकहित प्रकाशन
लखनऊ